समता कथा माला पुष्पांक-*14*

एक रात की बात

आचार्य श्री नानेश

k'kd
श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
lerk Hkou] chdkusj jkt-

❖ समता कथा माला पुष्पांक-*14*

❖ एक रात की बात

❖ आचार्य श्री नानेश

❖ प्रथम संस्करण : अक्टूबर, *2012, 3100* प्रतियाँ

❖ मूल्य : *10/-*

❖ अर्थ-सहयोगी :
स्व. श्री प्यारेलालजी भंडारी परिवार
अलीबाग (महाराष्ट्र)

❖ प्रकाशक :
श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, आचार्य श्री नानेश मार्ग
श्री जैन पी.जी. कॉलेज के सामने, नोखा रोड़,
बीकानेर-334401(राज.)
फोन: *0151-2270261, 3292177, 0151-2270359 (Fax)*
visit us : www.shriabsjainsangh.com
e-mail : absjsbkn@yahoo.co.in

❖ आवरण सज्जा व मुद्रक :
तिलोक प्रिंटिंग प्रेस, बीकानेर
दूरभाष : *9314962475*

प्रकाशकीय

महिमा मण्डित स्व. आचार्य-प्रवर श्री नानालालजी म.सा. के रतलाम चातुर्मास में सन् 1988 में उन्हीं के तत्वावधान में जैन सिद्धांत विश्वकोष का लेखन कार्य प्रारम्भ हुआ। उसी के कथा खण्ड में अनेक कथाओं का भी संयोजन हुआ है। कुछ तकनीकी स्थितियों से उक्त कोष का प्रकाशन कार्य अब तक संभव नहीं हो पाया। कथा से आबाल वृद्ध को सात्विक प्रेरणा प्राप्त होती है। हर वर्ग उसे रूचि से पढ़ता है। इसलिए कोष में संयोजित कथाओं के प्रकाशन का निर्णय लिया गया। इस लेखन- सम्पादन में श्री शांतिलालजी मेहता, कुम्भागढ़, चित्तौड़गढ़ के अथक परिश्रम को भी नहीं भुलाया जा सकता।

उपरोक्त पुस्तक समता कथा माला पुष्पांक-14 **एक रात की बात** के रूप में आप सभी के समक्ष प्रस्तुत है।

इस पुस्तक के प्रकाशन में अर्थ सहयोगी के रूप में स्व. श्री प्यारेलालजी भंडारी परिवार, अलीबाग (महाराष्ट्र) ने जो सहयोग प्रदान किया है। उसके लिए संघ आपका आभारी है।

राजमल चौरड़िया
संयोजक - साहित्य प्रकाशन समिति
श्री अ.भा. साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर

अर्थ सहयोगी

जिनके जीवन की पगदण्डी सदैव मानव कल्याण हेतु आगे बढ़ी और जिन्होंने नि:स्वार्थ भाव से अपना सम्पूर्ण जीवन लोककल्याणकारी कार्यों में समर्पित किया और स्वयं सादगी व सरलता से अपने सम्पूर्ण जीवन को व्यतीत करते रहे ऐसे आदर्श सुश्रावक **श्री प्यारेलालजी भंडारी** समाज के अग्रणी श्रावकों में से एक थे। आपका जन्म स्व. श्रीमती उमरावबाई की रत्नकुक्षी से स्व. श्री प्रेमराजजी भंडारी के घर आंगन में हुआ। आप मूलत: सोजतसिटी (राजस्थान) के निवासी थे। आपने अपने लोक-कल्याणकारी कार्यों से अपना ही नहीं मारवाड़ का भी गौरव बढ़ाया। आप युवाकाल से ही मेहनती, लगनशील एवं कर्त्तव्यपरायण व्यक्तित्व थे। जिन्होंने अपनी कौशलता व प्रमाणिकता से किराणा के होलसेल व्यापार को आगे बढ़ाया जो आज चहुँमुखी विकास की ओर गतिमान है।

आप अलीबाग किराणा एसोसियेशन के अध्यक्ष तथा शासन द्वारा नियुक्त भ्रष्टाचार र्निमूलन समिति रायगढ़ के भी अध्यक्ष रहे है। आप सामाजिक क्षेत्रों के साथ-साथ धार्मिक क्रियाकलापों के भी प्रगाढ़ पक्षधर रहे है। आपने अनेकों वर्षों तक स्वाधयायी सेवा दी जो स्तुत्य है। आपके चौविहार व शीलव्रत के प्रत्याख्यान रहे। देव, गुरु एवं धर्म के प्रति अटूट

श्रद्धावान श्रावक थे। अनेकों थोकड़ों जैसे भक्तामर, पुच्छिसुणं आदि कंठस्थ थे तथा नित्य सामायिक, प्रतिक्रमण, मौन, नवकारसी, पौरसी आदि कई प्रकार के प्रत्याख्यान भी लिये हुए थे। आपने अपनी मातुश्री की परम्परा को आगे बढ़ाते हुए जहाँ पर भी पूर्व आचार्य श्री नानेश एवं वर्तमान आचार्य श्री रामेश का चातुर्मास हुआ है वहाँ पर अपने बहन-बहनोई श्रीमती कमलाबाई-श्री नेमीचंदजी कोठारी के साथ चौका लगाकर भरपूर दर्शन, सेवा एवं प्रवचन का लाभ लिया था।

आप धर्म के साथ-साथ सामाजिक एवं लोक कल्याणकारी कार्यों के भी प्रबल पक्षधार रहे है। आपने संघ की अनेकों प्रवृत्तियों जैसे समता भवनों का निर्माण, साहित्यों का प्रकाशन, श्रमणोपासक विकास सहयोग हेतु, स्वधार्मी सहयोग, आचार्य श्री नानेश ध्यान केन्द्र आदि अनेकों प्रवृत्तियों में मुक्तहस्त से सहयोग प्रदान किया। आपने मुंबई समता भवन निर्माण व नानेश निकेतन रतलाम में भी विशेष सहयोग प्रदान किया था। वास्तव में आपने अपने जीवन में अर्थ उपार्जन ही नहीं अपितु अर्थ विसर्जन के मूल मंत्र को भी धारण किया हुआ था। आपके जीवन की सबसे बड़ी विशिष्टता रही है कि आप स्पष्टवक्ता व स्वच्छ संवाद करने वाले व्यक्तित्व थे। दिनांक 13.06.2010 को आपका देवलोक हो गया जो सम्पूर्ण संघ व समाज के लिये अपूरणीय क्षति है जिसे कभी भी पूर्ण नहीं किया जा सकता।

आपकी धर्मपत्नी श्रीमती शांताबाईजी भंडारी वात्सल्य की प्रतिमूर्ति एवं धर्मनिष्ठ सुश्राविका है जिन्होंने सम्पूर्ण जीवन अपने पति के धार्मिक व सामजिक सभी कार्यों में आदर्श नारीत्व

का परिचय देते हुए सहभागिता निभायी है। आप आचार्यों एवं चारित्रत्माओं के दर्शन, सेवा लाभ हेतु तत्पर रहती है। आपने अपने जीवन में अनेकों तप त्याग के प्रत्याख्यान किये हुए है। आप दम्पति के बताये हुए आदर्शों पर चलकर आपके पुत्र-पुत्रवधुएँ श्री दिलीपजी-श्रीमती सुरेखाजी, श्री राजेन्द्रजी-श्रीमती पुष्पाजी संस्कारों की धरोहर को आगे बढ़ा रहे है। आपके दोनों ही सुपुत्र समाज व संघ के कार्यों में तन-मन-धन से सहयोग प्रदान कर संघ की सेवा कर रहे है। आज भी आपके परिवार में पिताजी के बताये हुए आदर्शों को आगे बढ़ाते हुए नित्य प्रार्थना का क्रम जारी है। आपके सुपुत्र श्री दिलीपजी नानेश निकेतन रतलाम के आधार स्तम्भ सदस्य भी है। आपकी सुपुत्री-दामाद मीनल-श्री महेशजी कोठारी-मुंबई, श्रीमती सुनीता-श्री अनिलजी गांधी -अमरावती, पौत्र-पौत्री जयेश, दीपेश, कोमल, मोनिका व शिल्पा परिवार की यश एवं कीर्ति को आगे बढ़ा रहे है। सम्पूर्ण भंडारी परिवार भगवान महावीर, आचार्य श्री नानेश एवं आचार्य श्री रामेश के बताये हुए सिद्धांतों पर चलकर संघ सेवा कार्य में रत है। भविष्य में भी आपके परिवार द्वारा संघ को इसी प्रकार से सहयोग प्राप्त होता रहे इन्हीं शुभकामनाओं के साथ.....।

अनुक्रमणिका

एक रात की बात	:	9
मधु की एक बूंद के लिए	:	23
गाय बोली- बछड़ा बोला	:	34
अठारहसरा हार आचार्य के गले में	:	46
स्वर्ण पुरुष की छाया	:	57
कैसे-कैसे घूमा त्रिकोण?	:	66
कस्तूरी मृग की पूंछ	:	81
कामदेव का अवतार या	:	92
कैसे तोड़ा गया गणतंत्र?	:	107

एक रात की बात

आइए, श्रेष्ठिवरों, आज मेरे यहाँ पधारकर आपने महती कृपा की। नगर के प्रमुख आठ श्रेष्ठियों का एक साथ स्वागत करते हुए मुझे हार्दिक प्रसन्नता है। मेरे योग्य सेवा के लिए आदेश दें- ईभ्य सेठ ऋषभदत्त ने नम्रतापूर्वक सबको यथास्थान बिठाकर निवेदन किया।

आप तो ईभ्य श्रेष्ठि हैं, हम सबमें परम श्रेष्ठ, हम भला आपको कोई आदेश देने की बात सोच भी नहीं सकते हैं। हम तो एक प्रस्ताव लेकर आपकी सेवा में उपस्थित हुए हैं।

ऐसा क्या संयुक्त प्रस्ताव है आप सब श्रीमानों का?

हम आठों अपनी आठ कथाओं का हाथ आपके सुपुत्र जम्बूकुमार के हाथ में देकर आपका सहृदय संरक्षण प्राप्त करने के इच्छुक हैं।

यह तो आपके स्नेह और सद्भाव का प्रतीक है। निश्चय ही जम्बू विवाह के योग्य है तथा मैं आपके प्रस्ताव को स्वीकार करना चाहूंगा, पर निश्चयात्मक

उत्तर देने से पहले अपने पुत्र से विचार-विमर्श कर लेना समुचित रहेगा- ऋषभदत्त ने सुझाया।

सेठ साहब, वे आपके सद्गुणी पुत्र हैं। क्या वे आपके निश्चय को कभी भी टाल सकते हैं ? और फिर आप उनके हित में ही तो निर्णय लेंगे। हमारी सद्गुणी कन्याओं से तो आप व आपके सभी परिवार वाले सुपरिचित हैं, फिर हम अनिश्चय की स्थिति में लौटकर नहीं जाना चाहते हैं- एक स्वर से सभी बोले।

सेठ ने अपनी सेठानी धारिणी से विचार किया। दोनों एकमत थे कि जम्बू का विवाह अब अविलम्ब कर देना चाहिए और ऐसी सुन्दर गुणशीला कन्याओं का संयोग शुभ है। जम्बू से पूछकर निश्चय करने की बात पर धारिणी ने कहा- जब ऐसी श्रेष्ठ कन्याओं का प्रस्ताव है तो उसमें जम्बू को क्या आपत्ति हो सकती है ? फिर मेरा जम्बू ऐसा थोड़े ही है जो माता-पिता के निर्णय का विरोध करेगा।

जम्बूकुमार ईभ्य सेठ ऋषभदत्त और धारिणी सेठानी का परम प्रिय इकलौता पुत्र था। श्रेष्ठ शिक्षा एवं सुलझे हुए विचारों वाला। गर्भवती होने पर सेठानी ने जम्बू वृक्ष का स्वप्न देखा था, इसी कारण पुत्र का नाम जम्बूकुमार रखा गया, जो सदा अपनी श्रेष्ठ आज्ञाकारिता की शीतल छाया से उन्हें हर्षित बनाए रखता था।

माता-पिता के अपने पुत्र के प्रति अमित विश्वास का कारण उसकी सहज गुणशीलता ही थी। वह सुसंस्कारों से सम्पन्न जो था।

ऋषभदत्त ने आठों श्रेष्ठियों को अपना निर्णय सुना दिया- मैं आपके प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार करता हूँ। आप सब प्रसन्नता पूर्वक विवाह की तैयारियाँ आरम्भ करें।

आठों श्रेष्ठि खुशी-खुशी वहाँ से विदा हुए।

इतने में बाहर से आकर जम्बूकुमार ने अपने माता-पिता की पदवन्दना की। उसकी मुखाकृति पर छाए आनन्द से ऋषभदत्त एवं धारिणी दोनों अतीव आनन्दित हुए, क्योंकि उसके उस आनन्द को अपने शुभ संवाद द्वारा अभिवृद्ध करने को वे उत्सुक हो रहे थे।

किन्तु अपने अनुपम आनन्द का कारण बताते हुए पहले जम्बूकुमार ही अमित उत्साह से बोल पड़ा- पूज्यवर, अभी-अभी मैं सुधर्मास्वामी के दर्शन-वन्दन करके तथा धर्मोपदेश सुनकर ही लौट रहा हूँ। मुझे उनकी वाणी सुनकर परम आनन्द की अनुभूति हो रही है।

पुत्र, सुधर्मास्वामी जैसे परमज्ञानी की वाणी सुनना परम सौभाग्य की बात है। सेठ ने पुत्र के कथन का समर्थन किया।

उन्होंने अध्यात्म तत्व का प्राभाविक रीति से विश्लेषण किया और बताया कि सांसारिक सुखों का

स्वरूप खाज पद खुजलाने जैसा होता है, जो पहले-पहले सुखकारी लगती है पर अन्त में कष्टकारी दुःख का ही कारण बनती है। इस दुर्लभ, मनुष्य जन्म के इस दुःख को सदाकाल के लिए दूर कर देना चाहिए।

माता-पिता ने सशंकित भाव से अपने पुत्र की बात सुनी, किन्तु सहज स्वर में कहा- हाँ पुत्र, समय आने पर इस संसार से वैराग्य लेकर आत्म-कल्याण में प्रवृत्त होना ही चाहिए।

पूज्यवर, समय कब आता है, यह कौन जानता है? क्या आयु का निश्चय हमारे सम्मुख है? क्या हम वृद्ध होंगे ही? मृत्यु के आगमन की बात हमसे अज्ञात रहती है, अतः जब भी जागरण उत्पन्न हो जाए, हमें संसार से विरागी हो जाना चाहिए- पुत्र ने चर्चा को निर्णय के बिन्दु तक पहुँचाना चाहा।

ऋषभदत्त तीव्र बुद्धिधारी था, पुत्र की मनःस्थिति को समझ कर प्रस्तुत चर्चा को टालते हुए कहने लगा- पुत्र, अभी-अभी यहाँ से नगर के प्रमुख आठ श्रेष्ठि विदा होकर गए हैं। वे अपनी पुत्रियों के तुम्हारे साथ सम्बन्ध का प्रस्ताव लेकर आए थे और मैंने उन्हें हाँ कर दी है, अतः अभी तो हमें विवाह की तैयारियाँ आरंभ करनी है।

पिताश्री, मैं तो सुधर्मा स्वामी के यहाँ से श्रमण धर्म अपनाने का संकल्प लेकर आया हूँ। श्रमण ही बनना

चाहता था, पर आप दोनों की आज्ञा की अपेक्षा है- जम्बू ने विनयपूर्वक कहा।

अभी-अभी मैंने विवाह की स्वीकृति दी है और अभी ही तुम यह कैसी बात कह रहे हो? मेरी प्रतिष्ठा का क्या होगा? घबराकर सेठ ने कहा।

पुत्र की बात पर पिता से अधिक चौंकी माता धारिणी। अभी-अभी उसने पुत्र की आज्ञाकारिता के विश्वास पर ही तो पति को विवाह का निर्णय ले लेने की सहमति दी थी और अभी ही पुत्र ऐसी बात कर रहा है। वह कुछ उत्तेजित हो गई, बोली- पुत्र, तुम्हारे पिता ने तुमसे पूछकर ही सम्बन्ध निश्चय करने की बात कही थी, किन्तु मैंने ही तुम्हारे विश्वास पर कहा था कि निश्चय कर लिया जाए। अब तुम अपने पिता की प्रतिष्ठा का तो विचार करो और माता के विश्वास का भी। उसकी आँखों में आँसू भर आए।

माताजी, आप भी मेरी भावनाओं को समझिए। यह संसार तो अनन्त बार भोगा है, मेरे अन्तःकरण में आत्म-कल्याण की यह जो लहर उठी है, उसे दबाइए मत- जम्बू भी स्नेहाप्लावित हो उठा।

पुत्र, मेरा इतना ही आग्रह है कि यह निश्चित विवाह तो तुम कर ही लो, फिर जैसा तुम्हें प्रियकारी लगे।

तो मैं आपकी आज्ञा के आगे झुक जाता हूँ।

विवाह के दूसरे ही दिन दीक्षा ग्रहण कर लेने से फिर आप मुझे नहीं रोकेंगे- पुत्र ने भी अपना निर्णय सुना दिया कि पिता की बात भी रह जाए, माता का आग्रह भी और उसका स्वयं का संकल्प भी।

माता भी तब कुछ नहीं बोली पुत्र की दृढ़ता को देखकर। उसने सोचा- विवाह होते ही आठ-आठ रूपसी बुद्धिशालिनी सुकुमारियाँ सारे मामले को बखूबी संभाल लेंगी। एक रात की बात तब बड़ी बात बन जाएगी, उसे निश्चिन्त हो जाना चाहिए। तब धारिणी ने अपने पति को भी निश्चिन्त किया कि एक रात की बात है, सबकुछ ठीक हो जाएगा।

परन्तु धारिणी का पति ऋषभदत्त निश्चिन्त नहीं हो सका। उसने पुत्र के सशक्त स्वर का अनुभव किया था और उसका मन कहने लगा था कि एक रात के बाद कदापि गृहस्थी में नहीं ठहरेगा। अतः ऐसी संदिग्ध स्थिति कन्याओं एवं उनके अभिभावकों से छिपाकर नहीं रखनी चाहिए- ऐसा करना न नैतिक होगा, न व्यावहारिक।

आठों कन्याओं सहित आठों श्रेष्ठि सेठ ऋषभदत्त का सन्देश पाकर परस्पर विचार विमर्श हेतु एक स्थान पर एकत्रित हुए।

जम्बूकुमार के साथ अपनी कन्याओं का मात्र

विवाह सम्पन्न करा देना और सन्देह की स्थिति में गिरना क्या उचित रहेगा? एक ने बात शुरू की।

आपका कथन विचारणीय है। हो सकता है, विवाह के बाद जम्बूकुमार का विचार बदल जाए और हो सकता है कि वह अपने वचन के अनुसार पहली रात के पश्चात् ही संसार का परित्याग कर दे- दूसरे ने अपना विचार बताया।

एक रात की बात है, कन्याओं का आकर्षण और आग्रह चल गया तो सब कुछ ठीक हो सकता है- तीसरे की राय थी।

चौथे ने कहा- तो क्यों नहीं इस बात का निर्णय कन्याओं को ही कर लेने दीजिए कि विवाह किया जाए या नहीं।

यही ठीक रहेगा- सब सहमत हो गए और वहाँ कन्याओं को अकेली छोड़कर बाहर दालान में चले गए।

तब कन्याओं के बीच विचार विमर्श प्रारंभ हुआ। एक ने कहा- यह हमारे ही सम्पूर्ण जीवन का प्रश्न है अतः यह समीचीन है कि निर्णय हम पर छोड़ा गया है। स्त्री के लिए विवाह पति सुख का ही दूसरा नाम है और यदि पति ही स्त्री को त्याग दे तो वैसे विवाह का क्या प्रयोजन?

दूसरी कन्या बोली- यदि संयम लेना ही था तो कुमार ने विवाह करने की स्वीकृति क्यों दी? इससे लगता है कि उनका संकल्प पूर्ण परिपक्व नहीं है।

तीसरी ने सोत्साह कहा- क्या कच्चे संकल्प को हमारा रूप-कुठार काट नहीं फैंकेगा? रूप के आगे तो बड़े-बड़े ऋषि मुनि तक चंचल हो उठते हैं।

चौथी कन्या कहने लगी- इसका निर्णय व्यावहारिक आधार पर करना चाहिए। यदि कुमार नहीं रुके तो हमारे जीवन का क्या आधार रह जाएगा? हम व्यर्थ की जोखिम क्यों उठाएँ?

पाँचवी ने मत प्रकट किया- अपने प्रेमपाश को इतना दुर्बल क्यों समझती हो, जो आठ-आठ के प्रेमपाश से एक सरल हृदय पति बांधा न जा सके?

सब कन्याओं एवं अभिभावकों ने ऋषभदत्त सेठ को अपनी स्वीकृति पहुँचा दी कि अनिश्चय की स्थिति के उपरान्त भी वे सब विवाह के लिए तत्पर हैं।

फिर क्या था? विवाह समारोह हर्ष और उल्लास से सम्पन्न हुआ? कन्याओं के पिताओं ने दहेज में इतनी धन सामग्री दी कि ईभ्य सेठ का संचय कई गुना हो गया।

ऋषभदत्त की अतिथियों के भाव भरे स्वागत तथा धारिणी की अपनी पुत्र वधुओं के मंगल गृह प्रवेश के कार्य में इतनी व्यस्तता रही कि विवाह बाद की

पहली रात घिर आई। दहेज की सामग्री जहाँ की तहाँ ही बिखरी पड़ी रही और सेवकगण वर कक्ष सज्जा में नियोजित हो गए।

मिलन की पहली रात, किन्तु भिन्न-भिन्न हृदयों में भिन्न-भिन्न भाव।

जम्बूकुमार निश्चिन्त था कि एक रात की ही तो बात है। प्रातः होते ही तो वह इन सारे सांसारिक बन्धनों से सदा के लिए मुक्त हो जाएगा।

ऋषभदत्त और धारिणी के मन की कल्पनाएँ कि एक रात की ही तो बात है- ये मेरी चतुर वधुएँ मेरे पुत्र को जीवन भर के लिए अवश्य बांध लेंगी।

और आठों सुकुमारियों की साहसिक धारणा कि वे अपने पति पर अपने प्रेमपाश ऐसी कुशलता से फैंकेगी कि वे चाहकर भी उससे छूट नहीं पाएंगे। बस इस एक रात की ही बात है।

फिर भी वातावरण आशंकाओं से मुक्त नहीं था।

जम्बूकुमार ने अपने कक्ष में प्रवेश किया और सोलह शृंगारों से सजी देवांगनाओं के समान अपनी आठों पत्नियों पर एक उड़ती हुई निर्लिप्त-सी दृष्टि डाली और अपने पलंग पर बैठकर वह चिन्तन में डूब गया। कक्ष में सन्नाटा छा गया।

सन्नाटे को तोड़ने का दायित्व लेना पड़ा नव विवाहित वधुओं को ही। एक अपने प्रेम रस में स्वर को घोलकर बोली- प्राणप्रिय, क्या आप हमसे प्रारंभ से ही रुष्ट हैं?

रुष्ट भला मैं क्यों? मैं तो किसी से भी रुष्ट नहीं हूँ- कुमार ने सहज होकर कहा।

फिर आपने हमें देखा नहीं, हमसे बोले नहीं, क्या हमारे रूप और गुणों में कोई न्यूनता है? दूसरी ने सल्लज्ज होकर पूछा।

देख रहा हूँ, बोल रहा हूँ।

प्राणनाथ, फिर आपका ध्यान हमारी ओर कहाँ है? तीसरी सहास्य बोली।

मैं प्रात:काल के ध्यान में डूब गया था कि कब मैं उन्मुक्त जीवन आरंभ कर सकूँ?

लेकिन प्राणवल्लभ, अभी तो रात आरंभ ही हुई है और प्रात:काल दूर है- चौथी ने कटाक्ष का तीर चलाया।

पर प्रात:काल तो होना ही है और मुझे दीक्षा अंगीकार करनी ही है- कुमार ने दृढ़ता से कहा।

तो आपने हमसे विवाह ही क्यों किया? क्यों हमारे जीवन को अधर में लटका दिया? पाँचवी ने रोष का प्रदर्शन किया।

जम्बूकुमार मौन बैठा रहा। एक-एक करके सभी ने अपने हृदय की आशा निराशा व्यक्त की,

उलाहना दिया और सच्चे प्रेम का परिचय कराया प्रणय के सरोवर में आकंठ डूबकर। फिर भी कुमार ने मौन नहीं तोड़ा- जब निश्चय अटल था तो वह क्या कहकर अपनी पत्नियों को सन्तोष देता?

सब एक साथ बोल पड़ी- कहाँ मधुर मिलन के अरमानों की यह रात और कहाँ आपके प्रेमहीन मौन का यह वज्रपात? निःश्वास छोड़कर उन सबने भी मौन धारण कर लिया। कक्ष में फिर सन्नाटा छा गया।

इस बार सन्नाटा तोड़ा एक डाकू ने। वह प्रभव नाम का डाकू था। अपनी टोली के साथ दहेज की धन सामग्री लूटने के लिए आया था। धन सामग्री के गट्ठर भी सबने बांध लिए थे और उठाकर वे भागने ही वाले थे कि एक अचिन्त्य घटना घटित हो गई। डाकू दल के सभी लोगों के पांव जहाँ के तहाँ धरती से चिपक गए। सिर पर गट्ठर और पाँव अचल- सभी के हक्के-बक्के रह गए। कक्ष में प्रकाश देखकर डाकुओं के नायक प्रभव ने उस कक्ष में हो रही नव दम्पतियों की सारी बातें श्रवण कर ली थीं। वह भीतर जाकर जम्बू से बोला- तुम शायद नहीं जानते कि मैं कुख्यात चोर हूँ और तुम्हें दहेज में प्राप्त सारा माल लूटने आया हूँ। पर तुम्हारी बातें सुनकर मैं अपने आपको रोक नहीं पाया।

ईभ्य सेठ के पुत्र और आठ सुन्दर रमणियों के पति, तुम प्रातः मुनि बनोगे- क्या तुम ऐसा त्यागकर लोगे? मुझे तो तुम्हारा त्याग सामयिक नहीं दिखाई देता। लोग रूप और धन के लिए सब कुछ न्यौछावर कर देते हैं- मुझे ही देखो न, धन के लिए में कौनसा अकर्म नहीं करता- और तुम प्राप्त को त्याग रहे हो- प्रभव के आश्चर्य का पार नहीं रहा।

प्रभव, संसार के भोग तो अनेक बार भोगे हैं, किन्तु आत्मानन्द का अभी तक भी आस्वादन नहीं मिला है। उसी के लिए मैं दृढ़ प्रतिज्ञ हूँ। मैं तो कहता हूँ कि तुम भी सब छोड़कर इस मार्ग पर आ जाओ तो वह आनन्द पा जाओगे, जिसका अनुभव तुम्हें आज तक कभी भी नहीं हुआ होगा- कुमार ने डाकू पर अपना प्रभाव डाला।

डाकू निःस्पन्द खड़ा रहा, उसे लगा कुमार का मार्ग अद्‌भुत मार्ग होना चाहिए, वह सोच में पड़ गया।

इस बीच एक वधू ने कहा- भाई, तुम कुमार को भली प्रकार समझाओ। विवाह के बाद की हमारी यह पहली रात है और प्रातः हम आठों को भी ये छोड़कर जा रहे हैं।

प्रभव की सोच गहरा गई- इस अल्पवय में यह कुमार इतना बड़ा त्यागी है। विचार वेग में ही वह बोला- कुमार! और सब छोड़ो लेकिन इन सुकुमार

कन्याओं की मनोकामनाओं का तो कुछ खयाल करो। यह आपका कर्त्तव्य भी है।

मैं अब न तो मधु का लोभी हूँ और न सांसारिक सम्बन्धों में मेरी कोई रूचि रही है। जीव अपने ही कर्मों से शुभ या अशुभ गति को प्राप्त करता है, अतः प्रतिबोध पाया हुआ जागृत चेता पुरुष ही सब प्रकार के अनाचारों से बच सकता है। जागृति के इस मार्ग पर ये आठों भी चलें और तुम भी- तो कितना उत्तम हो। अनेक तरह से समझाते हुए कुमार ने अनुरोध किया।

यह प्रतिबोध सुनकर प्रभव भाव विह्वल हो उठा और बोल पड़ा- मैं आपके मार्ग पर चलूंगा, मैं भी दीक्षा लूंगा। तत्क्षण ही सभी डाकुओं के पाँव छूट गए, लेकिन साथ ही आठों ललनाओं के पाँव भी छूट गए- उन्हें अपनी धरती खिसकती हुई प्रतीत हुई। फिर भी उन्होंने अन्तिम प्रयास नहीं छोड़ा।

एक-एक पत्नी ने अपने विरागी पति को कथा और चर्चा के माध्यम से राग की ओर मोड़ने की भरसक कोशिश की, किन्तु कुमार के वैराग्यपूर्ण हृदय पर उनकी तर्कों का तनिक भी असर नहीं हुआ। इसके विपरीत वे ही अपने पति की आध्यात्मिक तर्कों के प्रति प्रभावित होती गई और ऊषा की लालिमा क्या फैली कि आठों ही पत्नियाँ पति के मार्ग पर चलने के लिए उद्यत हो गई।

सूर्योदय तक तो यह सारी बात सारे नगर में फैल गई- कुमार से सभी पत्नियाँ प्रभावित हो गई, प्रभव डाकू भी प्रभावित हो गया और सब दीक्षा की तैयारी कर रहे हैं। फिर प्रभाव के उस प्रकाश ने कुमार के तथा कन्याओं के माता-पिताओं को भी आवृत्त कर लिया और दीक्षार्थियों की संख्या पांच सौ सत्ताइस हो गई- जम्बू के परिवार के सत्ताइस और प्रभव सहित पाँच सौ डाकू। डाकुओं ने दीक्षा के पूर्व राजा को समर्पण किया एवं क्षमादान पाया।

सुधर्मा स्वामी ने दीक्षा की गुरुता का बोध कराते हुए सबको त्याग मार्ग पर अग्रगामी बनाया। जम्बू स्वामी उनके उत्तराधिकारी हुए।

जम्बू स्वामी की ऐतिहासिकता सिद्ध है। वे भगवान महावीर के द्वितीय पट्टधर रहे एवं सिद्धि के अन्तिम स्वामी बने।

स्त्रोत- त्रिषष्टिशलाका पुरुष चारित्र, उपदेश माला।

सार- आत्मानन्द का आस्वादन सर्वश्रेष्ठ होता है।

मधु की एक बूंद के लिए

"धनपाल सार्थवाह अपना व्यापारिक काफिला लेकर परदेशों में वाणिज्य व्यवहार के लिए जा रहे हैं, अत: कोई भी व्यक्ति अपने किसी भी कार्य से काफिले के साथ जाने का इच्छुक हो, वह साथ में चल सकता है। उसके भोजन, सुरक्षा की व्यवस्था सार्थवाह की ओर से की जाएगी" यह उद्घोषणा हस्तिनापुर नगर में की गई।

इसके अनुसार अपने-अपने कार्यों से बीहड़ रास्तों को पार करके अपने गंतव्य तक पहुँचना चाहने वाले कई व्यक्ति काफिले के साथ जाने के लिए तैयार हो गए। इन्हीं लोगों में जयचन्द नामक एक व्यक्ति भी सम्मिलित था। सारा काफिला साथ-साथ चला।

चलते चलते काफिला एक घने वन में पहुँच गया। वहाँ बड़े-बड़े वृक्षों की ठण्डी छाया फैली हुई थी, अत: सभी लोग अपनी थकान दूर करने की इच्छा से वहाँ विश्राम करने के लिए ठहर गए।

जयचन्द कुछ अलग ही प्रकृति का व्यक्ति था। वह सब लोगों से दूर एक वृक्ष के नीचे जाकर अकेला ही विश्राम करने लगा। ठण्डक के कारण उसको वहाँ नींद लग गई। नींद इतनी गहरी लगी कि सारा काफिला विश्राम करके प्रस्थान कर गया, पर वह सोया ही रह गया।

संध्या घिर आई तब कहीं जाकर जयचन्द की नींद खुली। वह भागा-भागा पड़ाव के स्थल पर पहुँचा, परन्तु वहाँ पर कोई नहीं था। वह उस घने वन में अकेला रह गया और ऊपर से काली रात का अंधकार बढ़ने लगा। ऐसी संकट की वेला में वह घबरा उठा। रात और अनजाने रास्ते के कारण वह आगे भी नहीं बढ़ सकता था, अत: कहीं रात गुजारने का वह बसेरा ढूंढ़ने लगा। एक वृक्ष की ऊँची शाखा पर वह चढ़ गया और किसी तरह उसने रात्रि व्यतीत की।

प्रात:काल होने पर जयचन्द अनुमान से एक ओर चलने लगा। वह कुछ ही दूर तक चला होगा कि सामने से एक मदमस्त हाथी आता हुआ उसे दिखाई दिया। वह भयभीत होकर इधर-उधर भागने लगा। अन्तत: एक वृक्ष की नीचे लटक रही शाखों को पकड़कर इतनी ऊँचाई तक चढ़कर वह भी लटक गया कि जहाँ हाथी उसे नहीं पकड़ सकता था।

उस स्थान से जयचन्द ने जब इधर-उधर अपनी दृष्टि घुमाई तो उसने अपने आपको बड़ी ही विचित्र स्थिति में पाया, जिसे देखकर वह थर्रा उठा। हाथी बहुत बलशाली था जो पहले तो उछल-उछल कर अपनी सूंड से उसे पकड़ लेने की कोशिश करता रहा, पर जब वह वैसा न कर सका तो सारे वृक्ष के तने को ही अपनी सूंड में समेटकर धराशायी करने के लिए वह अपना बल प्रयोग करने लगा। इस कारण वृक्ष कांपने सा लगा।

जयचन्द जिन शाखों के गुच्छे को पकड़ कर निराधार लटका हुआ था, उस गुच्छे को उसने देखा कि दो मोटे चूहे अपने तीखे दाँतों से ऊपर के भाग को लगातार तीव्र गति से कुतरे जा रहे थे। वह भाग निरन्तर क्षीण होता जा रहा था और जयचन्द अनुमान नहीं लगा सका कि कब वह गुच्छा वृक्ष से अपना सम्बन्ध हट जाने से टूट सकता है और कब जयचन्द धड़ाम से धरती पर गिर सकता है।

उसने यह भी देखा कि यदि धड़ाम से वह धरती पर गिरे तो नीचे धरती भी नहीं होगी। जहाँ लटक रहा था, ठीक उसके नीचे एक अंध कूप (बिना पानी का गहरा कुआँ) था। इतना ही नहीं, उसे दिखाई दिया कि उस कूप में एक विशालकाय भयंकर विषधर फन

फैलाए फुफकारें कर रहा था, जैसे कि उसी के गिर पड़ने की वह प्रतीक्षा कर रहा हो।

जब उसकी दृष्टि ऊपर की तरफ घूमी तो उसे दिखाई दिया- उसी के ऊपर की शाखा पर मधुमक्खियों का एक बहुत बड़ा छत्ता। मधुमक्खियाँ भी जैसे अनगिनत थी- ऊपर बैठी हुई और छत्ते के चारों ओर मंडराती हुई। ज्यों-ज्यों हाथी अपने भारी बलप्रयोग से वृक्ष के तने को झकझोरता कि वह छत्ता हिल उठता और भय के कारण मक्खियाँ आक्रामक हो उठती। उस समय उनके आक्रमण का एक ही शिकार था- नीचे लटक रहा जयचन्द। वे मधुमक्खियाँ घूम-घूमकर जयचन्द को दंश देने लगी, उसके शरीर का कोई भाग नहीं बचा, जहाँ मधुमक्खियों ने नहीं काटा तो, बल्कि झुंड की झुंड बनकर वे बराबर हमला किए जा रही थी। वृक्ष हिलता और वे छत्ते से उड़ती तथा जयचन्द के शरीर से चिपक जाती- लगातार दंश देती रहती। उनके तीक्ष्ण डंकों से उसके सारे शरीर में तीव्र पीड़ा होने लगी।

जयचन्द ने विचार किया- हाथी वृक्ष को हिला रहा है, हो सकता है किसी क्षण वह उसे उखाड़ फैंके। चूहे लगातार उसकी पकड़ी हुई शाखा को कुतरे जा रहे हैं, जिससे कभी भी वह शाखा टूट सकती है। नीचे गिर

जाने पर वह उस अंधकूप में ही गिरेगा, जिससे बाहर निकल पाना दुस्साध्य है और विषैला नाग जो फन फैलाए खड़ा है, वह क्या उसे बाहर निकलने की कोशिश भी करने देगा? मधुमक्खियाँ तो उसे असह्य पीड़ा पहुँचा ही रही हैं। क्या इन सबके बीच वह किसी भी दशा में जीवित बचा रह सकेगा? कदापि नहीं। मृत्यु उसके लिए अवश्यंभावी है- ऊपर मृत्यु, नीचे मृत्यु और चारों दिशाओं में मृत्यु। वह चारों ओर से- ऊपर नीचे से मात्र मृत्यु के क्रूर पंजों में जकड़ा हुआ था। यह निश्चय था कि किसी भी पल मौत उसे निगल जाएगी और तड़प-तड़पकर उसे अपने प्राण दे देने होंगे।

मृत्यु भय के कारण बुरी तरह से त्रस्त जयचन्द ने ऊपर मुख उठाया और तभी मधुमक्खियों के छत्ते से रिसकर मधु की एक बूंद सीधी उसके मुख में आ गिरी- उसकी मधुर मिठास उसके मुँह में चारों ओर फैल गई।

जयचन्द की मनोदशा में यकायक भारी परिवर्तन आ गया। एक बार वह सारे मृत्यु भयों को भूल गया और उस मधुर मिठास में उसका मन ऐसा रम गया कि उसे अपने मुख के भीतर ही नहीं, चारों ओर भी मधु ही मधु दिखाई देने लगा- अरे, यह तो बड़ा सुखमय संसार है। यह मधु तो प्रत्यक्ष अमृत ही है- कितना स्वादिष्ट है, कितना तृप्तिदायक है और कितना सुखदायक है। सुख

भी ऐसा जो सारे तन-मन को रोमांचित कर रहा है। इस सुख को वह कभी भी नहीं छोड़ सकता- चाहे चारों ओर ऊपर नीचे प्राणान्तक संकटों से वह घिरा हुआ है, पर सुख तो सुख ही है। वह अपने मुख में पड़ी हुई मधु की एक बूंद को ही चारों ओर घुमा फिराकर उसके स्वाद का सुख लूटने लगा, इतना ध्यान केन्द्रित होकर कि वह मिठास उसके मुख में घुली ही रहे- गले से नीचे उतरकर कहीं उसके स्वाद को फिर से स्वादहीन न बना दे। मधु की उस एक बूंद का एक बार पान करने से जयचन्द अपनी क्षुधा एवं तृषा पीड़ा में भी अतीव तृप्ति का अनुभव करने लगा और समझने लगा कि उसे अपने जीवन का प्राप्य मिल गया है- वह सुखी है और यों भूलने लगा था कि आत्म-प्रवंचना करने लगा कि सारे संकटों की इस परिस्थिति में अब उसे कोई परवाह नहीं है। वह सारी आपदाओं को विसार कर मधु की एक और बूंद पाने की आशा में मुँह ऊपर किए खुशी-खुशी वहाँ लटका रहा।

उस समय संयोगवश आकाश मार्ग से अपने विमान द्वारा एक विद्याधर अपनी विद्याधरी के साथ कहीं जा रहा था। उसने संकटग्रस्त जयचन्द को देखा तो उसका दिल दयाभाव से द्रवित हो उठा, विचार आया

कि इस मानव की रक्षा की जाए। विद्याधरी की दृष्टि भी उस पर गिरी- महिला का हृदय तत्त्काल पसीज गया, अतः पति कुछ कह सके, उससे पहले ही वह विद्याधरी अतीव कारुणिक स्वर में बोल उठी- प्रिय देखो न, यह मनुष्य कितनी घोर विपत्तियों के बीच में फँसा हुआ है? इसे मृत्यु के मुख से निकालो।

विद्याधर ने सूक्ष्म दृष्टि से जयचन्द के मन एवं मुख के भावों का परीक्षण किया और फिर अपनी पत्नी से कहने लगा- प्रिये, तुम्हारा कथन एकदम सत्य है कि यह मनुष्य अपने चारों ओर मरणान्तक कष्टों से घिरा हुआ है, परन्तु संभवतः एक बात की ओर तुमने ध्यान नहीं लगाया है।

वह क्या?

यह मनुष्य अपने भावों से ऐसा लगता है कि जैसे कि सुख के अनुभव से फूल रहा हो। वह सुखाभास ही सही- पर इन सारे भयों को इस समय तो वह भूलकर ही लटका हुआ है।

ऐसा कौनसा सुख मिल रहा है इस क्षुद्र मानव को इस समय, जो ऐसे घोर खतरों से भी यह बेखबर है?

प्रिये, इस समय उसके मुख में मधु की मात्र एक बूंद घुल रही है और उसी के स्वाद में वह खतरों

से बेखबर बना हुआ है बल्कि दूसरी बूंद की आशा में यहीं लटके रहना ही वह पसन्द करेगा। देख नहीं रही हो आशाओं और इच्छाओं से घिरा हुआ उसका झूठी खुशी से चमकता हुआ चेहरा? मेरे विचार से इस समय वह मेरे द्वारा उसकी जीवन रक्षा के प्रस्ताव से सहमत भी नहीं होगा। वह यहीं लटका हुआ ही रहना चाहेगा- उसे मधु की दूसरी बूंद की आशा जो है।

मैं आपकी बात नहीं मानती। इस मनुष्य की आँखों के सामने इतने प्रत्यक्ष मृत्यु भय हैं और वह क्या मात्र मधु की एक बूंद के लिए इसी तरह लटका हुआ ही रहना चाहेगा? क्या इतना मूर्ख है वह? आप पूछकर तो देखिये- सारी स्थिति स्पष्ट हो जाएगी- विद्याधरी ने हठाग्रह किया।

अच्छा, यह भी करके देख लेता हूँ- कहा विद्याधर ने और वह अपने विमान को जयचन्द के सन्निकट ले गया। तब वह जयचन्द से बोला- भाई, हमने जाते हुए देखा कि तुम घोर विपत्तियों से घिरे हुए हो तथा किसी भी क्षण अकाल मृत्यु को प्राप्त कर सकते हो, अतः मैं तुम्हें बचा लेने के विचार से तुम्हारे पास आया हूँ। आओ, तुम मेरे विमान में सवार हो जाओ, फिर मैं तुम्हें कुछ ही पलों में जहाँ तुम कहोगे, वहीं पहुँचा दूंगा।

जयचन्द ने विमान की ओर देखा- जीवन की निश्चित धारणा दिखाई दी उसे उस विमान में सारे मृत्यु भयों से दूर। किन्तु उसकी आस की दृष्टि अनायास ही दौड़ गई मधुमक्खियों के छत्ते की ओर कि कम से कम मधु की एक बूंद और गिर जाए उसके मुख में- इस मधु का स्वाद कितना सुखदाई है। उसकी वितृष्ण दृष्टि छत्ते पर ही अटक गई।

विद्याधर ने पुनः कहा- मानव, अपनी जीवन रक्षा चाहते हो तो शीघ्र मेरे विमान पर आ जाओ। उस समय अधिक न सोचो। अपनी लालसा में फँसे रहे तो फिर उस घोर कष्टदायक मृत्यु से तुम कदापि न बच पाओगे।

कठिनाई से जयचन्द बोला- कृपा करके मधु की एक बूंद और ले लेने दो। मैं इसके स्वाद के बिना रह नहीं पाऊंगा।

अच्छा, एक बूंद और ले लो- उस विद्याधर ने कहा कि उसकी इच्छा पूरी हो जाए और वह उससे तृप्त होकर उसके विमान पर चढ़ जाए।

तभी छत्ते से मधु की एक और बूंद जयचन्द के ऊपर किए हुए खुले मुख में गिरी। उसके चेहरे पर एक नई चमक फैल गई। वह उस बूंद को बड़ी आसक्ति के साथ मुँह में घुला-घुलाकर, ऐसा लगने लगा जैसे वह

सुख ले नहीं रहा हो बल्कि सुख लूट रहा हो। उस समय उसने विद्याधर या उसके विमान की तरफ देखा तक नहीं, बल्कि उसने अपनी तृष्णाभरी दृष्टि फिर छत्ते पर फैला दी।

विद्याधर ने फिर चेतावनी दी- भाई, आना हो तो अब तुरन्त आ जाओ। मधु की एक और बूंद तुम्हारे मुँह में गिर चुकी है, अब किस बात का इन्तजार है ? मैं अब अधिक रुक नहीं सकूंगा।

अनन्त लालसा से पुती हुई जयचन्द की मुखाकृति तब विद्याधर के लिए देखने लायक बन गई थी, वह आश्चर्य से सोचने लगा- अरे, यह मानव कितना आसक्त, कितना लोभी और कितना मूर्ख है, जो इसे आसन मृत्यु की भी परवाह नहीं रही मात्र मधु की एक बूंद के लिए ? विद्याधर उकता गया, बोला- चलना हो तो चलो, अन्यथा मैं जा रहा हूँ।

बस, मधु की एक बूंद और फिर चला चलूंगा- भारी खुशामद करते हुए जयचन्द कहने लगा।

अच्छा भाई, एक बूंद और ले लो, लेकिन वह कब तक गिरेगी ?

वह गिरती ही होगी, एक बूंद और ले लूँ- जयचन्द की नजर तब भी उस विमान की ओर नहीं मुड़ी, छत्ते पर ही लगी रही।

तब छत्ते से मधु की एक बूंद और जयचन्द के मुँह में गिरी और वह उसे अधीरता से चाटने लगा।

अब तो चले आओ, भाई-विद्याधर ने अपना विमान चला दिया।

एक बूंद और, बस..... जयचन्द का सारा ध्यान छत्ते पर ही केन्द्रित था।

तुम्हारा 'बस' कभी नहीं आएगा, मेरे मित्र, मैं जाता हूँ और विद्याधर चला गया, जयचन्द ने उसे रोका भी नहीं। बाद में जयचन्द के हाथ पछतावा ही रह गया।

स्रोत - त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र।

सार - संसार की आसक्ति ऐसी ही भयानक है।

❖ ❖ ❖

गाय बोली- बछड़ा बोला

मारो-काटो, जो मिले लूट लो, कोई बचने न पाए- डाकू दल का नायक चिल्ला रहा था और डाकू घरों में घुसकर निहत्थे लोगों को पीट रहे थे, मार रहे थे और जो भी मूल्यवान पदार्थ दिखाई देता, वह उनसे छीन रहे थे।

'भागो दौड़ो, बचाओ-बचाओ' की करुण पुकार मचा रहे थे गोकुल जनपद के भोले-भाले निवासी।

चारों ओर डाकुओं का आतंक छाया हुआ था- बच्चे और बूढ़े भी मारे जा रहे थे और धन के साथ युवतियाँ भी लूटी जा रही थी। सारे गाँव में डाकुओं के क्रूर हमले से हाहाकार मचा हुआ था।

गोकुल अंगदेश का समृद्ध गाँव था। यहाँ के अधिकांश निवासी गोप और गोपालक थे। इनके पास पर्याप्त संख्या में गायें थी और उनका समुचित रूप से पालन-पोषण करते हुए ही वे न केवल अपना निर्वाह

सुखपूर्वक चला रहे थे, अपितु समृद्धि भी संचित कर रहे थे। उन्ही गोपों के शान्त जीवन में इन डाकुओं ने महाविनाश का दृश्य उपस्थित कर दिया था।

अपने शस्त्र बल के प्रयोग से उन डाकुओं ने पूरे गाँव को जी भरकर लूटा और लोगों को संत्रास दिया। वे अपनी लूट की सामग्री के साथ एक अत्यन्त रूपवती गोपवधू को भी ले गए। वह एक दस वर्षीय पुत्र की माँ थी- पुत्र बेचारा माँ-माँ, माँ-माँ की पुकार लगाता रहा पर पत्थरदिल डाकुओं को तनिक भी दया नहीं आई उन्होंने हाथ झटक कर उसके पुत्र को दूर फैंक दिया और उसकी विलाप करती हुई माँ को अपने साथ ले गए।

तुम कौन हो और यहाँ किस प्रयोजन से आए हो? क्या गाना सुनोगे? चम्पानगरी के एक प्रमुख कोठे की स्वामिनी वेश्या ने अपरिचित आगन्तुक से पूछा।

नहीं, हम गाना सुनने नहीं आए हैं। तुम क्रय कर सको तो एक गाना सुनाने वाली बेचने आए हैं। क्या तुम उसे देखना चाहोगी? आने वाले ने सीधे तौर पर व्यापार की बात कही।

अरे अवश्य, दिखाओ कि लड़की कैसी है? अगर पसन्द आ गई तो मैं अवश्य खरीद लूंगी और मुँहमांगा धन दूंगी- वेश्या की उत्सुकता बढ़ गई थी।

गोकुल से लूटी गई गोपवधू सामने लाई गई। वेश्या ने उसे भली प्रकार देखा- परखा, तब कहा- मुझे पसन्द है, बोलो क्या लोगे?

दस हजार स्वर्णमुद्राएँ।

भाई, यह मूल्य तो बहुत ही अधिक होगा।

क्या कहती हो, अधिक होगा? इसे देख नहीं रही हो- कितनी गठीली देह है, उमगता हुआ यौवन है और है मनमोह लेने वाली आकर्षक सुन्दरता! फिर भी तुम कहती हो कि मूल्य अधिक है। लेना हो तो खरीद लो, मैं यहाँ अधिक नहीं ठहर सकता हूँ, एक हजार मुद्राएँ कम दे देना।

उस वेश्या ने हाँ कर दी और मूल्य चुका दिया।

गोपवधू की अद्‌भुत सुन्दरता पर वह वेश्या मुग्ध हो गई। उसकी धारणा बन गई थी कि पूर्णतया प्रशिक्षित कर लेने पर चम्पानगरी में ही नहीं, दूर-दूर तक वह सर्वाधिक ख्याति अर्जित कर सकेगी। उसकी वही ख्याति तब उसके लिए धनार्जन का असीमित स्त्रोत बन जाएगी। वह उसे पाकर परम प्रसन्न हो गई थी और अपने सुखद भविष्य के ताने-बाने बुनने लगी थी।

वेश्या ने उसका विधिवत् गान एवं नृत्य का प्रशिक्षण प्रारंभ कर दिया और गणिका संस्कृति का भी।

गोपवधू तीव्र बुद्धिशालिनी थी, अल्प समय में ही गान एवं नृत्य विद्या में पारंगत बन गई। उसके गणिका शिष्टाचार की भी चारों ओर चर्चा होने लगी। चम्पानगरी का वह ऐसा रत्न बन गई कि जो भी उसके सम्पर्क में आता, उसका ही बनकर रह जाता। वह दूर-दूर तक विख्यात हो गई, इतनी कि कोठे की स्वामिनी ने उसके साथ की एक रात का मूल्य चढ़ा दिया- एक हजार स्वर्णमुद्राएँ, पर तब भी ग्राहकों का अभाव नहीं था, अपितु किसी भी ग्राहक को मूल्य जमा करा कर पहले से निर्धारित करना होता था कि उसे किस रात का सहवास प्राप्त हो सकेगा।

समय व्यतीत होता गया और धीरे-धीरे गोकुल गाँव का घाव भी भरता गया। डाकुओं के आक्रमण से इधर-उधर भाग निकले लोग फिर से वहाँ बस गए और कठिन परिश्रम के साथ पुनः गो पालन का व्यवसाय करने लगे। धीरे-धीरे उनके गाँव में समृद्धि ने पुनः प्रवेश किया और लोग सुख-शान्ति के साथ अपना जीवन यापन करने लगे।

गोपवधू का वह अवयस्क पुत्र भी युवा हुआ और कुशल व्यवसायी भी। हजारों स्वर्णमुद्राओं का व्यापार करने लगा और विपुल सम्पत्ति का स्वामी बन

गया। एक बार वह व्यापारिक कार्य से चम्पानगरी गया। वहाँ से अच्छी सफलता मिली, उसने बड़ा लाभ कमाया। दिनभर के परिश्रम के बाद उसे अपना मन बहलाने की इच्छा हुई। उसने इधर-उधर पूछा तो प्रख्यात गणिका की चर्चा उसे सुनने को मिली, धन उसके पास पर्याप्त मात्रा में था ही। उसने अपने सेवक को मूल्य राशि अग्रिम रूप से जमा कराने के लिए भेज दिया तथा सहवास की रात्रि निर्धारित करा ली।

सायंकाल होने पर वह गोप युवक स्नानादि से निवृत्त हुआ, वस्त्रालंकारों से सज्जित बना तथा सुगंधित द्रव्यों का प्रयोगकर गोपवधू गणिका के कोठे की ओर चला।

वह गोप युवक या गोपवधू गणिका नहीं जानते थे कि क्या अधर्म होने जा रहा है, किन्तु गोकुल गाँव की एक देवी को उस अधर्म का उपयोग लग गया। वह नहीं सह सकी कि ऐसा अधार्मिक और अनैतिक कांड घटित हो जाए। उसे अनुकम्पा हो आई उन अज्ञात माता-पुत्र पर। उसने उन्हें सावचेत करने का निश्चय कर लिया।

मगन मन गोप-युवक राजपथ पर चला जा रहा था- अपने यौवन और सौन्दर्य के सहवास के मधुर सपने

संजोता हुआ। वह उसके नव यौवन का पहला आनन्द होगा। अचानक चलते-चलते उसके पाँव रुक गए। मार्ग में एक गाय और उसका बछड़ा इस तरह बैठे हुए थे कि किनारे पर थोड़ा-सा ही स्थान छूटा हुआ था। वह उधर होकर ही निकल जाने को आगे बढ़ा, लेकिन वहाँ काफी मात्रा में विष्टा पड़ी हुई थी और उसका पाँव उससे सन गया। विष्टा से पाँव क्या सना कि उसके पूरे बदन में झुरझुरी छूट गई- कहाँ तो उसने बहुमूल्य सुगंधित द्रव्यों का प्रयोग किया हुआ है और कहाँ यह पाँव दुर्गंधित विष्टा से सन गया है? वहाँ पाँव धोने पौंछने का तो कोई साधन था नहीं, उसने पाँव को बछड़े के शरीर से रगड़कर पौंछ लेना चाहा।

ज्योंही वह अपना पाँव बछड़े के शरीर तक ले गया कि बछड़ा मनुष्य की बोली में बोलने लगा। गोप युवक चौंक पड़ा। बछड़ा अपनी माँ से कह रहा था- ओ माँ, यह कैसा पुरुष है जो विष्टा से सना अपना पाँव मेरे शरीर से पौंछकर मुझे मललिप्त बनाने की चेष्टा कर रहा है?

गोप युवक का आश्चर्य तब और बढ़ गया, जब गाय ने भी मनुष्य की ही बोली में अपने बछड़े की बात का उत्तर दिया। गाय बोली- वत्स, इस पुरुष पर क्रोध

मत करना, कारण यह बेचारा अज्ञानी है। इसे इस बात का विवेक ही नहीं है कि यह क्या करने के लिए जा रहा है?

माँ, तुम यह कैसे मान रही हो कि यह पुरुष अज्ञानी है? इसकी मुखाकृति या वेशभूषा से तो ऐसा कुछ दिखाई नहीं देता- बछड़े के पूछने में बड़ी उत्सुकता दिखाई दे रही थी, किन्तु उससे भी अधिक उत्सुकता गोप युवक के मन में जाग उठी अपने अज्ञान की बात जान लेने की- क्या विष्टा सना अपना पाँव बछड़े के शरीर से पौंछना उसका अज्ञान है अथवा गणिका के रात्रि सहवास में जाना ही उसका अज्ञान है? वह सशंकित हुआ और एक अनजाने सन्देह ने उसके मन मानस को घेर लिया। वह वहीं ठगा-सा खड़ा रह गया।

गाय बोली- जो कुछ होता है, वह सब कुछ दिखाई थोड़े ही देता है और मनुष्य के दो रूप भी तो होते हैं- एक बाहर का रूप और दूसरा भीतर का रूप। जैसा मनुष्य साफ, सुथरा और सुहावना बाहर से दिखाई देता है, आवश्यक नहीं कि वह वैसा ही साफ, सुथरा और सुहावना अपने भीतर से भी हो। गाय ने यह कहा लेकिन तीखा आघात लगा गोप युवक के हृदय पर- क्या वह ऐसा पुरुष है, जो अज्ञानी होने के साथ-साथ

भीतर से मलिन और कुत्सित भी है?

बछड़ा बोला जैसे कि गोप युवक के मन में उठे प्रश्न को वही पूछ रहा हो- माँ, तो क्या इस पुरुष का अन्तर्मन मलिन और कुत्सित है?

हाँ वत्स, प्रत्यक्ष रूप से तो अभी इसका मन मलिन और कुत्सित नहीं है, पर शीघ्र ही होने वाला है।

ऐसा क्यों माता?

तुम्हें बताऊँ मेरे वत्स कि यह अज्ञानी और अविवेकी पुरुष इस समय कहाँ जा रहा है तथा किस प्रकार अपने अन्तर्मन को मलिन एवं कुत्सित बनाने वाला है? माँ ने बछड़े से भी ज्यादा अधीरता जगा दी उस गोप युवक के मन में।

अवश्य बता दो, माँ। किसी का अज्ञान और अविवेक मिट जाए तो यह प्रसन्नता की बात ही होगी।

तो सुनो, यह पुरुष इस समय अपनी जन्म देने वाली माता के साथ ही भोग भोगने के लिए जा रहा है और रात्रि सहवास के हर्ष में उन्मत्त बना हुआ है- गाय बोली।

तब तो माँ, यह नराधम है। इस के स्पर्श से मुझे बचा लो- बछड़ा बोला।

गोप युवक का पाँव जैसे वहीं चिपक गया हो-

तनिक भी हिल डुल नहीं सका, लेकिन दूसरे ही क्षण उसकी आँखें भी पथरा गई, वहाँ उसकी दृष्टि के सामने न गाय थी और न बछड़ा। यह सब क्या हो गया- उसका तो सारा शरीर ही जैसे पत्थर का बन गया था, एकदम निश्चल और नि:स्पन्द।

तत्क्षण उसका मन दस वर्ष पीछे लौट गया। उसे साफ-साफ याद आ गया कि उसकी माँ को उसकी आँखों के सामने से डाकू उठाकर ले गये थे- हो न हो, यह विख्यात वेश्या उसकी वही माँ हो सकती है। यह गाय और बछड़ा भी साधारण नहीं था, वरना क्या वे मनुष्य की बोली बोल पाते? अवश्य ही यह कोई दैवी प्रयोग था जो ऐसा अधर्म और कुकर्म करने से उसे बचा लेना चाहता था। अब वह अज्ञानी और अविवेकी कदापि नहीं रहेगा।

गोप युवक के कदम कोठे की तरफ ही बढ़ रहे थे, पर उसके मन की दशा बिल्कुल बदल चुकी थी- वहाँ न तो अब यौवन और सौन्दर्य के मिलन की उमंग थी तथा न ही सपने संजोने की कल्पना। किन्तु उमंग मिटी नहीं थी, वह तो कई गुना बढ़ गई थी एक पावन उमंग के रूप में। वह उमंग थी वर्षों से खोई हुई माँ के मिलन की, एक विवश एवं दुखिया माँ के उद्धार की।

तब उसके पाँव शीघ्र गति से आगे बढ़ रहे थे।

वह कोठे पर पहुँचा- उसकी वहाँ प्रतीक्षा ही की जा रही थी, सहवास पूर्व निर्धारित जो था। वह उस कक्ष में पहुँचा दिया गया, जहाँ क्रीत गणिका उसकी अगवानी में खड़ी हुई थी। वह तो विचार-मग्न था, धम से पलंग पर बैठ गया और एकटक सामने खड़े चेहरे को देखने लगा, सही कहना तो यह होगा कि चेहरे में झांकने लगा। गणिका हतप्रभ कि ऐसा पागल युवक पहली बार आया है जो किसी काम चेष्टा के बिना उसको देख रहा है, लेकिन इस देखने में भी तो एक अबोध सरलता है, कामुकता कतई नहीं। फिर यह कौन है? एक गणिका के कक्ष में इतना बड़ा मूल्य चुकाकर क्यों आया है? वह समझने की पूरी कोशिश करने पर भी समझ नहीं पा रही थी। यह उसके गणिका जीवन का पहला और विचित्र अनुभव था।

गोपवधू गणिका से रहा न गया, उसका तन-मन इतने वर्षों से व्यावसायिक जो बन गया, वह कहने लगी- सुन्दर युवक, क्या सोच रहे हो? मैं आपकी सेवा में सशरीर उपस्थित हूँ- यह कहकर वह उस गोप युवक के पास पलंग पर सटकर बैठ गई, लेकिन गोप युवक तत्काल वहाँ से खड़ा हो गया। हड़बड़ाकर गणिका भी

खड़ी होने लगी तो उसने उसे आग्रहपूर्वक वापिस बिठा और भावुकता भरे स्वर में पूछा- मैं तुमसे एक बात जानना चाहता हूँ, मुझे सही-सही बताना।

युवक, बात पूछने का मूल्य नहीं दिया है तुमने। सहवास का मूल्य दिया है और व्यवसाय यह कहता है कि तुम उसी की बात करो गणिका ने कुछ रुक्ष होकर कहा। मैं व्यवसाय की बात छोड़ देता हूँ। तुम भी मूल्य की चिन्ता न करो। सच-सच बताओ, तुम यहाँ आई, उससे पहले कहाँ थी? युवक ने उत्तर का हठ किया।

क्या करोगे उसे जानकर? वह सब कुछ अब इस जीवन में कहने लायक नहीं रहा। गणिका भी भाव विह्वल हो गई उस युवक को देखते-देखते, पर समझ नहीं पाई कि इस युवक को देखकर उसके मन में कामुकता की जगह भावुकता क्यों जाग उठी है और वह भी निर्दोष भावुकता?

यों समझो कि मैं मात्र यही जानने के लिए यहाँ आया हूँ। मुझे और कोई काम नहीं है- युवक अधीर हो उठा।

यदि जानना ही चाहते हो तो इस अभागी की दु:खभरी गाथा सुनो। मैं गोकुल गाँव की गोपवधू थी, मेरा परम प्रिय एक पुत्र था। एक बार डाकुओं ने अपनी क्रूरता से मेरे गाँव को रौंद डाला और मेरे पुत्र से मुझे

विलग करके उठा ले गए। उन्हीं ने मुझे यहाँ बेच दिया था। यों मेरी सोने-सी गृहस्थी उजड़ गई और मैं गणिका बनने पर विवश हो गई। लेकिन तुम यह सब क्यों जानना चाहते हो? उसने प्रश्न भरी आँखों से युवक को देखा जिनमें वात्सल्य की रेखाएँ खिंचने लगी थी।

तब गोप युवक के मन में तथ्य की पुष्टि हो चुकी थी और उसके कारण उसका हृदय मातृप्रेम से भर आया- जो भी है, जैसी भी है, वही उसकी माँ है। वह कुछ बोला नहीं, उसकी आँखों से हर्षाश्रु बहने लगे और वह अपनी माँ के चरणों में झुक गया- कठिनाई से रुंधे गले की जकड़न को तोड़ते हुए इतने ही शब्द निकले- तुम ही मेरी माँ हो, और मैं तुम्हारा पुत्र।

गणिका अपने को भूल गई, युवक अपने यौवन को भूल गया और वहाँ रह गए केवल माँ और उसका पुत्र, क्योंकि गाय बोली थी, बछड़ा बोला था।

स्त्रोत- त्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरित्र।

सार- प्रतिबोध से ही मनुष्य अनाचारों से बच सकता है।

❖ ❖ ❖

अठारहसरा हार आचार्य के गले में

महाराज, वह देवदत्त अठारहसरा दिव्य हार टूट गया है, उसे कोई कुशल स्वर्णकार ही जोड़ कर सुधार सकेगा। आप तो जानते हैं, उसे पहने रहना मुझे बड़ा प्रिय लगता है, अतः वह शीघ्रातिशीघ्र सुधर जाए तो समुचित रहेगा- रानी चेलना ने अपने पति राजा श्रेणिक को यह कहते हुए वह टूटा हुआ हार दिखाया।

राजा ने हार भली-भांति देखा और कहा- यह तो दिव्य हार है। इसमें जुड़े रत्नों के छिद्र इतने सूक्ष्म दिखाई दे रहे हैं कि छिद्र में बारीक धागे तक के जाने की संभावना कम है, इस कारण तुम्हारे कथनानुसार अति कुशल स्वर्णकार को ही बुलाया जाना चाहिए- फिर वह पूर्ण विश्वसनीय भी होना चाहिए, जिसे यह बहुमूल्य या एक प्रकार से अमूल्य हार सौंपना होगा। श्रेष्ठ स्वर्णकार के लिए सार्वजनिक घोषणा कराना ही उचित रहेगा।

जैसा आप उपयुक्त समझें- रानी ने उत्तर दिया और हार देकर चली गई।

राजा ने घोषणा करवाई कि अमूल्य हार को जो विश्वास के साथ सुधार सके वैसा स्वर्णकार राज्य सभा में उपस्थित हो। सुधारने का पारिश्रमिक एक लाख स्वर्ण मुद्राएँ होगा।

घोषणा सुनकर राजगृही का एक वृद्ध और निर्धन किन्तु कुशल एवं बुद्धिशाली स्वर्णकार राज्य सभा में पहुँचा। राजा ने उसे हार दिखाया और पूछा- क्या तुम इस टूटे हुए हार को फिर से सांध सकोगे?

हाँ महाराज सांध दूंगा- हार का सूक्ष्म निरीक्षण करके स्वर्णकार ने कहा।

एक बात और है, यह देव द्वारा दिया हुआ अमूल्य हार है, अतः विश्वास पूर्ण कार्य तो चाहिए ही, लेकिन हार प्रदान करते समय देववाणी यह थी कि जो भी हार को सांधेगा, उसके सामने मृत्यु का खतरा रहेगा। इस कारण भली प्रकार सोच लो कि क्या यह कार्य तुम करना भी चाहोगे?

वृद्ध स्वर्णकार ने सोचा- मैं तो बूढ़ा हो चला हूँ, आज नहीं तो कल मरना ही है, पर लाख स्वर्ण मुद्राएँ मिलेंगी, जिससे मेरे चारों पुत्र तो सुखी हो जाएंगे-

सारा परिवार दु:खदायी निर्धनता के दलदल से तो निकल जाएगा। वह बोला- राजन्, वृद्ध तो हूँ ही, यदि राजपरिवार की सेवा में मेरे जीवन का उपयोग हो गया तो अपना सौभाग्य ही मानूंगा।

राजा स्वर्णकार के कथन से प्रसन्न हुआ। वह टूटा हुआ हार उसे सौंप दिया गया और राजा ने कोषपाल को आदेश दिया- पारिश्रमिक का आधा भाग पचास हजार मुद्राएँ इस स्वर्णकार को अभी अग्रिम रूप से दे दी जाएँ।

स्वर्णकार धन और हार लेकर खुशी-खुशी घर पहुँचा। लेकिन हार सांधने के लिए बैठा तो उसकी सारी खुशी गायब हो गई। वह उलझन में पड़ गया कि हार को वह कैसे सांध पाएगा, जबकि रत्न के छिद्र में बारीक से बारीक सोने का तार या धागा तक नहीं जा रहा है? दो कारणों से उसकी चिन्ता बढ़ती चली गई एक तो अमूल्य हार उसके किसी लालची पुत्र ने इधर-उधर कर दिया तो उसे मृत्युदण्ड भुगतना होगा। दूसरे, अपने कार्य में वह असफल रहा तो लाया हुआ अग्रिम धन वापिस लौटाना होगा ही और भर्त्सना भी सहनी होगी। वह उदास हो गया और एक लगन से कार्य का उपाय सोचने लगा।

स्वर्णकार की दृष्टि चिन्तातुरता में सामने भूमि

पर ही लगी हुई थी, उसने देखा- एक बूंद मधु की गिरी हुई थी और एक चींटी उसके अंश को प्राणपण से खींच रही थी। इस दृश्य से उसके मस्तिष्क में जैसे बिजली-सी कौंधी और वह खुशी से उछल पड़ा। उसने अपने पट्ट पर रत्न रख दिया और उसके छिद्र पर थोड़ा मधु लगा दिया। फिर एक बारीक धागे के किनारे पर मधु चुपड़ दिया और उस किनारे को छिद्र के पास चींटी के आगे रख दिया। चींटी ने धागे के किनारे को मुँह में दबाया और छिद्र के पार निकल गई। देखते-देखते स्वर्णकार का कार्य सम्पन्न हो गया। एक छोर से दूसरे छोर को जोड़कर उसने तत्काल उस हार को सांध दिया।

किन्तु देववाणी भी असत्य होनी नहीं थी। हार के संधते ही उस स्वर्णकार का मस्तिष्क फटा और कुछ ही देर में वह मृत्यु को प्राप्त हो गया। उस समय वह अपने पुत्रों को यही भलामण दे पाया- पुत्रों, यह अठारहसरा हार अमूल्य है। तुम इसे तुरन्त राजा को सौंप आना और शेष पारिश्रमिक पचास हजार मुद्राएँ वहाँ से प्राप्त कर लेना।

पुत्रों ने हार ले जाकर राजा श्रेणिक को भेंट किया। राजा ने उसे उलट-पुलटकर ठीक से देखा, उसे ठीक लगा। पुत्र बोले- राजन्, आधा पारिश्रमिक शेष है

वह हमें दिला दिया जाए। हम उसी स्वर्णकार के पुत्र हैं।

पारिश्रमिक तो स्वर्णकार को ही मिलेगा। हमारा अनुबंध उसी के साथ था।

लेकिन महाराज, हमारे पिताश्री की तो मृत्यु हो चुकी है। पारिश्रमिक तो हमें ही दिलाया जाना न्यायोचित है। कृपा कर कोषपाल को आदेश दें- पुत्रों ने नम्र प्रार्थना की।

ऐसा संभव नहीं है- राजा ने कोषपाल की सम्मति पर उन्हें खाली हाथ ही रवाना कर दिया। पुत्र निराश होकर घर लौट आए। एक दिन सारा परिवार उदासी में डूबा हुआ बैठा था कि एक आश्चर्यजनक घटना घटी। कहीं से कूदता फांदता हुआ एक बन्दर आया और सारे परिवारजनों के समक्ष नि:शंक होकर खड़ा हो गया। सभी विस्मित होकर उसके मुँह को ताकने लगे।

वृद्ध स्वर्णकार मरकर बन्दर योनि में जन्मा था। धन पाने की गाढ़ी लालसा मन में रह जाने के कारण नई योनि में भी उसे अपने पूर्व के परिवार का जाति स्मरण ज्ञान के माध्यम से ध्यान आ गया और उसी ध्यान को लेकर बन्दर वहाँ पहुँचा था, यह जानने के लिए कि शेष पारिश्रमिक राजा ने उसके पुत्रों को चुका दिया है या

नहीं? बन्दर ने संकेतों की भाषा से यह तथ्य जान लिया कि राजा ने उसके पुत्रों को शेष पारिश्रमिक की राशि चुकाने से इनकार कर दिया। जानकर बन्दर का मुँह रोष से तमतमा उठा और वह तुरन्त वहाँ से चला गया।

बन्दर क्रुद्ध ही नहीं हुआ, अपितु वह प्रतिशोध की आग में जलने लगा। उसने निश्चय कर लिया कि वह राजा को पारिश्रमिक नहीं चुकाने का सबक सिखाएगा। फिर वह इसी टोह में घूमने लगा कि कब अवसर आए और कब वह अपना बदला ले?

एक दिन चेलना महारानी अपनी सेविका के साथ स्नान हेतु अशोक वाटिका में गई। वस्त्राभूषण उतार कर वह बावड़ी में जल क्रीड़ा करने लगी। दासी ने सभी आभूषण एक थाल में जमाकर रख दिए, जिनमें अठारहसरा हार भी सम्मिलित था। बन्दर तो पीछे पड़ा हुआ था ही, वह भी अशोक वाटिका में पहुँच गया और बावड़ी के पास वाले वृक्ष पर घात लगाकर बैठ गया। रानी ने किसी कार्य से सेविका को आवाज लगाई और वह वस्त्राभूषणों को वहीं छोड़ भागी-भागी बावड़ी में गई। बन्दर के लिए वह उपयुक्त अवसर था- दबे पाँव नीचे उतरा और अठारहसरा हार लेकर वहाँ से भाग गया।

बन्दर भागता-भागता सीधा अपने पूर्वजन्म के

निवास पर पहुँचा, जहाँ चौक में उसके चारों पुत्र बैठे हुए थे। उसने वह अठारहसरा हार अपने पुत्रों को सौंप दिया और वहाँ से चला गया।

अशोक वाटिका की बावड़ी पर से अठारहसरा दिव्य हार कोई उठाकर ले गया- यह राज्य की गंभीरतम घटना हो गई। चारों ओर कड़ाई से खोजबीन होने लगी और चोर के लिए मृत्युदंड की घोषणा कर दी गई। राजा श्रेणिक ने महामंत्री अभय को जोर देकर कहा- वह दुर्लभ हार हर हालत में जल्दी से जल्दी मिलना ही चाहिए। तुम देख रहे हो, रानी चेलना का बड़ा बुरा हाल है।

अभय ने राजा को आश्वस्त किया- आप चिन्ता न करें, जल्दी से जल्दी हार को खोज लिया जाएगा, मैं स्वयं प्रयासरत हूँ।

खोज का काम इतनी बारीकी, तेजी और कड़ाई से होने लगा कि सारी राजगृही में हलचल मच गई, बल्कि यह कहना चाहिए कि आतंक छा गया। इस सारे आतंक का सीधा असर पड़ा स्वर्णकार के पुत्रों पर, उनके तो दिल ही बैठ गए। कहीं खोज में उनके लिए किसी को जरा भी शंका हुई और तलाशी ली गई तो वे बुरी मौत मारे जाएंगे- हार तो उनके पास मिलेगा ही। लेते वक्त तो बदला शान्त हुआ था और खुशी मिली

थी, लेकिन अब वे घोर चिन्ता में डूब गए कि इस हार से छुटकारा कैसे पाया जाए? उनको एक पल के लिए भी चैन नहीं पड़ रहा था, बल्कि सारा परिवार एक साथ बैठकर आठ-आठ आँसू बहा रहा था।

उसी समय वही बन्दर उछलता हुआ चौक में आया यह जानने के लिए कि उसके करतब से उसके परिवार वाले किस सीमा तक प्रसन्नता का आनन्द ले रहे हैं? किन्तु वह सन्न रह गया यह देखकर कि वहाँ तो जैसे सब के सब शोक में डूबे हुए हैं- रो रहे हैं। वह खड़ा-खड़ा उन सबकी ओर देखता रहा। तभी एक भाई उठकर भीतर गया और बाहर आकर उसने वह हार बन्दर के सामने फैंककर कहा- आप इसे कहीं भी ले जाइए, लेकिन लेकर चले जाइए, वरना यही हम सबके मृत्युदंड का कारण बन जाएगा। जोरदार खोजबीन चल रही है और हम निश्चित रूप से पकड़ लिये जाएंगे।

बन्दर सारी स्थिति को भांप गया सो चुपचाप हार को उठाकर वहाँ से चला गया।

राजगृही के बाहर उद्यान में आचार्य सुहस्ति अपने शिष्य मंडल के साथ पधारे हैं- यह संवाद पाकर नागरिक, राज्याधिकारी आदि दर्शन-वन्दन के लिए जाने लगे। वह पाक्षिक दिवस था, अतः प्रवचन के पश्चात्

भी कई धार्मिक जन प्रतिक्रमण, पौषध आदि की धर्म क्रियाओं में भाग लेने के लिए उद्यान में संतों की सेवार्थ रुके रहे। उनमें महामंत्री अभयकुमार भी था।

प्रतिक्रमण से निवृत्त होकर आचार्य सुहस्ति ने अपने शिष्यों को सूचित किया कि के आज पूरी रात्रि तक कार्योत्सर्ग में स्थित रहेंगे। फिर यक्षायतन के समीपस्थ वृक्ष के नीचे वे ध्यानावस्थित हो गये।

बन्दर हार लिए हुए अस्त-व्यस्त मनोदशा में लुकता-छिपता इधर-उधर भटक रहा था कि हार को कहाँ डाले ताकि उसके परिवार वालों को किसी तरह की आंच न आए। दिन भर वह एक विशाल वृक्ष की कोटर में छिपा रहा। अंधेरा घिर आने पर वह हार की चिन्ता से मुक्त हो जाने के लिए बाहर निकला। तभी उसकी दृष्टि ध्यानमग्न आचार्य पर पड़ी। वह खुशी से उछला और उसने धीरे से उस हार को आचार्य के गले में डाल दिया।

रात्रि के प्रथम प्रहर की समाप्ति पर आचार्य की विश्रामणा के लिये मुनि शिव उनके समीप पहुँचे। उन्होंने चमकता हुआ अठारहसरा हार आचार्य के गले में पड़ा हुआ देखा तो वे भयमिश्रित आश्चर्य से चौंक पड़े। वे जब लौटकर आ रहे थे तो उनके मुख से जो शब्द उच्चरित हो रहा था वह था- भयं, भयं। अभय ने वह

शब्द सुना तो चौंक कर मुनि शिव से पूछा- मुनिवर, आपने यह शब्द कैसे कहा? भला मुनियों को क्या भय हो सकता है और वह भी इस समय? इस पर मुनि शिव ने अपने गृहस्थ जीवन की रोमांचक घटना सुनाई तथा कहा- अभी मैंने जो कुछ देखा उससे यह पुरानी स्मृति उभर आई और 'भय' शब्द बरबस निकल ही गया।

दूसरे प्रहर की वैयावृत्य से मुनि सुव्रत लौटे तो उनके मुँह से शब्द निकला- महाभयं, महाभयं। अभय ने उस शब्द को भी सुना और वह गहराई से विचार करने लगा। उसने मुनि को तत्क्षण पूछ भी लिया- भन्ते, साधु सन्तों के लिये कैसा भय? आपके मुख से 'महाभयं महाभयं' शब्द का उच्चारण क्यों?

संयमी व्यक्तियों को कोई भय नहीं होता किन्तु गृहस्थ काल में एक बार मैंने जटिल भय का अनुभव किया था, उसी की स्मृति आज ताजा हो जाने से मेरे मुख से इस शब्द का बरबस ही उच्चारण हो गया- मुनि ने अपने शब्दोच्चारण का स्पष्टीकरण दिया।

मुनिवर, वह ऐसा जटिल भय क्या था? कृपा करके उसका विवरण बताइए- अभयकुमार ने जिज्ञासा प्रकट की।

मुनि सुव्रत ने वह घटना कह सुनाई और तब

उसके प्रसंग से भी अभय आगे विचार करने लगा।

रात्रि के अन्तिम प्रहर में आचार्य की सेवा से मुनि जोयण लौटे तो उनके मुख से भी शब्द निकल रहे थे- अति भयं, अति भयं। अभय पुनः आश्चर्यान्वित हुआ और मुनि से उस शब्द के उच्चारण का अभिप्राय पूछने लगा। मुनि जोयण ने भी उस शब्दोच्चारण के प्रसंग से अपने गृहस्थ जीवन का एक ऐसा अनुभव कह सुनाया जो दुष्टता की अन्तिम सीमा का था।

तीनों मुनियों की बातें सुनकर उसका ध्यान आचार्य के ध्यान-स्थल की ओर मुड़ा क्योंकि सभी मुनियों ने वहाँ से लौटते समय ही उन शब्दों का उच्चारण किया था।

वह प्रातः होते ही उस स्थल पर गया और देखकर भौंचक्क रह गया- वह अठारहसरा हार आचार्य के गले में था। वह सब समझ गया, हार निकाल लिया। हार मिल गया, पर चोर का पता अज्ञात ही रहा।

अभय की औत्पाति की बुद्धि की ख्याति आज तक जीवित है।

स्त्रोत - आवश्यक निर्युक्ति।

सार - राजा को कभी अकार्य नहीं करना चाहिए।

❖ ❖ ❖

स्वर्ण पुरुष की छाया

उज्जयिनी नगरी में दो भाई रहते थे- शिव और दत्त। दोनों अत्यन्त निर्धन थे। जब उनका सामान्य जीवन निर्वाह भी अति कठिन हो गया तो दोनों चिन्तित हो उठे। दोनों ने विचार किया- अब यहाँ बैठे-बैठे काम नहीं चलेगा। कहीं बाहर जाकर कोई छोटा-मोटा व्यवसाय खोजना होगा, ताकि जीवन की मूल आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके। तब दोनों भाई परदेश के लिए रवाना हुए। दोनों ने सौराष्ट्र में पहुँचकर कोई व्यवसाय किया, पर भाग्य ने साथ नहीं दिया। तब दत्त ने व्यवसाय छोड़कर कृषि कर्म करना आरंभ किया, किन्तु शिव किसी व्यापारिक जहाज के साथ विदेश में चला गया।

वह नया और अनोखा प्रदेश था। शिव इधर-उधर भटकने लगा। एक बार वह मार्ग पर आगे जा रहा था, तब एक वट वृक्ष के नीचे उसने चार विदेशी व्यापारियों को बैठे हुए देखा। व्यापारियों ने उसे नहीं देखा, इस

कारण वह झाड़ियों के झुरमुट में छिपकर बैठ गया ताकि उन व्यापारियों की गुप्त हलचल को देख सके।

अकस्मात् वट वृक्ष की शाखाओं में से उतरकर एक स्वर्ण पुरुष दौड़ने लगा। वह स्वर्ण पुरुष एक डेढ़ हाथ लम्बा सोने का पुतला था। चारों व्यापारी उसको पकड़ने के लिए उसके पीछे-पीछे दौड़े।

स्वर्ण पुरुष ने चेतावनी देते हुए कहा- मेरे पीछे मत भागो। मैं स्वर्ण पुरुष हूँ अर्थात् अर्थ का पुंज हूँ और ध्यान रखो कि अर्थ ही सारे अनर्थों का मूल होता है। इस कारण मेरा पीछा छोड़ दो।

किन्तु धन के लोभी वे व्यापारी कहाँ मानने वाले थे? उन्होंने वह चेतावनी अनसुनी कर दी और वे उसके पीछे भागते रहे। कुछ दूर जाकर उन्होंने उसे पकड़ लिया और कस कर थाम लिया। उन्होंने उसे भूमि पर रख दिया और चारों उसे घेरकर बैठ गए। रातभर वे उस पर पहरा देते रहे। सवेरा होने पर दो व्यापारी निवृत्त होने गए तो अन्य दो व्यापारी उस पर पहरा देते रहे। एक पल के लिए भी वे उसे छोड़ना नहीं चाहते थे क्योंकि उन्हें भय था कि वह उन के अधिकार से निकलते ही कहीं अन्यत्र भाग जाएगा। वस्तुतः चारों व्यापारी उस स्वर्ण लोभ में अन्धे हो रहे थे।

अर्थ ही सारे अनर्थों का मूल होता है- यह चेतावनी स्वर्ण पुरुष ने दी थी, परन्तु न वह उन व्यापारियों के ध्यान में आई जो वहाँ बैठे स्वर्ण पुरुष पर पहरा दे रहे थे और न उन व्यापारियों के ध्यान में रही जो निवृत्त होकर नगर से भोजन आदि क्रय करने गए थे, अपितु नगर में गए दोनों व्यापारियों के मस्तक पर तो अनर्थ चढ़ ही बैठा। दोनों ने योजना बनाई कि यदि पहरा देने वाले दोनों व्यापारियों की जीवन लीला समाप्त कर दी जाए तो वह स्वर्ण पुरुष उन दोनों का ही हो जाएगा। यह निश्चय कर उन दोनों ने स्वयं भरपेट भोजन किया और जो भोजन पहरा देने वाले अपने साथियों के लिये उन्होंने क्रय किया था, उसमें उन्होंने विष मिला दिया और वे विष मिश्रित भोजन लेकर वन की ओर चल दिए।

विष से विष ही उत्पन्न होता है। उन पहरा देने वाले दोनों व्यापारियों ने योजना बनाई कि उनके दोनों साथियों के नगर से वहाँ पहुँचते ही वे दोनों अपनी-अपनी तलवार से दोनों का काम तमाम कर दें ताकि वह स्वर्ण पुरुष केवल उन दोनों का ही हो जाएगा। अतः ज्योंही वे दोनों व्यापारी भोजन लेकर वहाँ पहुँचे कि अनजाने में ही वहाँ पहरा दे रहे दोनों व्यापारियों ने उन दोनों पर अपनी तलवार से आक्रमण कर दिया। दोनों के सिर धड़

से अलग करके वे बहुत प्रसन्न हुए तथा निश्चिन्त भाव से भोजन करने बैठे। भोजन करने के साथ ही वे दोनों व्यापारी भी धरती पर लुढ़क गए।

यह सारा कांड झाड़ियों के झुरमुट के पीछे छिपा हुआ शिव देख रहा था। वह तुरन्त वहाँ से उठा और भागकर उसने उस स्वर्ण पुरुष को अपने अधिकार में कर लिया। सब देखकर भी शिव अपने लोभी मन को नियंत्रित न कर सका। उसने चेतावनी सिर्फ सुनी ही नहीं थी बल्कि उसका दुष्परिणाम भी अपनी आँखों से देख लिया था तथापि शिव लोभ के आवेग को दबा नहीं पाया। वह उस स्वर्ण पुरुष को लेकर अपने भाई दत्त के पास पहुँचा। स्वर्ण पुरुष की प्राप्ति कैसे हुई- वह सारी वार्ता उसने भाई को सुनाई और सुझाव दिया- अब हमारा भाग्य खुल गया है। इस स्वर्ण पुरुष को पाकर हमें परिश्रम करने की आवश्यकता नहीं है। चलो अपने घर पर चलें और सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करें।

उस स्वर्ण पुरुष को लेकर शिव और दत्त दोनों भाई उज्जयिनी की ओर चले। दोनों के दिल उछालें मार रहे थे कि अब जिन्दगी में जी भरकर मौज मजे उड़ाएंगे। ऐसी ही कल्पनाओं में वे दोनों पागल हुए जा रहे थे।

किन्तु अब स्वर्ण पुरुष की छाया शिव पर पड़

चुकी थी, फिर वह अपने मन की निष्पाप बनाए कैसे रख सकता था? चलते-चलते उसके मन में पाप उपजा- मैंने व्यर्थ ही दत्त को अपने साथ ले लिया। स्वर्ण पुरुष तो मुझे मिला है, इसमें दत्त का भाग किस बात का? वह निर्धन था तो निर्धन बना रहता, मुझे क्या था? उसे लाने की जो मैंने भूल कर दी है, उसे तो सुधारना ही होगा। अभी तक तो बाजी मेरे ही हाथ में है। यदि मैं इस समय दत्त को अपने मार्ग से हटा दूँ तो फिर स्वर्ण पुरुष मेरा अकेले का ही रह जाएगा- ऐसा सोचकर शिव चौंकन्ना होकर दत्त को मार डालने का मौका देखने लगा।

दत्त भी तो स्वर्ण पुरुष की छाया तले ही था। उसके मन में भी वैसा ही पाप उपजा और वह भी शिव को मार डालने का उचित अवसर देखने लगा। एक दूसरे पर घात लगाये हुए वे मार्ग पर चलते रहे और उसी मनोदशा में चलते-चलते अपने नगर की सीमा तक पहुँच गए।

नगरी के कोट कंगूरे दृष्टि में आने लगे और पूर्व स्मृतियाँ मंडराने लगी। अचानक शिव के विचारों ने पलटा खाया और शुभ धारा बहने लगी- कितना दुष्ट विचार आया मुझे? क्या स्वर्ण के लोभ में मैं अपने ही सहोदर की घात करूंगा? यह स्वर्ण-निर्जीव स्वर्ण जीवित मानव से ऊपर क्यों चढ़ने लगा है? यह तो मेरा मानसिक

विकार है और जो विकार होता है, वही तो पाप होता है। पाप ही अनर्थ है और अनर्थ का प्रेरक है यही अर्थ-यही स्वर्ण। मैं इस स्वर्ण के पीछे अपने मन में कोई विकार नहीं पालूंगा। नहीं चाहिए मुझे यह स्वर्ण और नहीं रहूंगा मैं इस स्वर्ण पुरुष की छाया में- ऐसा सोचते हुए उसे अपने स्वर्ण पुरुष से विक्षोभ हो आया और उसने उसे पास के एक सरोवर में फैंक दिया।

शुभ लहर ने दूसरे छोर पर भी शुभता को जन्म दिया। स्वर्ण पुरुष को फैंक देना देखकर दत्त बोला- भाई शिव, तुमने यह क्या किया? प्राप्त स्वर्ण का त्याग क्यों कर दिया?

भाई दत्त, तुम नहीं जानते कि इस स्वर्ण पुरुष की छाया ने मेरे मन में कैसे-कैसे घातक विकार उत्पन्न कर दिए और मैं क्या का क्या करने वाला था? मुझे उस पर घृणा हो आई और मैंने उसे फैंक दिया है।

दत्त भी, राहत की साँस लेते हुए बोला- भैया, आपने ऐसा करके उचित ही किया है। मेरे मन को भी इसके लोभ ने स्वच्छ और शुद्ध नहीं रहने दिया था।

एक दूसरे का हाथ अपने हाथ में लेकर फिर दोनों भाई आन्तरिक प्रेम का आनन्द अनुभव करते हुए अपने घर की तरफ बढ़ गए।

स्वर्ण पुरुष ज्योंही सरोवर के जल में गिरा, एक बहुत बड़ी मछली उसे निगल गई और बाद में वही मछली एक मछुआरे के जाल में फँस गई। जाल के भार को महसूस करके वह बहुत खुश हुआ कि बहुत मोटी मछली फँसी है, उसे बहुत ज्यादा लाभ मिलेगा। वह उस मछली को बाजार में बेचने चला गया।

उधर शिव और दत्त घर पहुँचे तो उनकी माता अपने बिछड़े बेटों से मिलकर फूली नहीं समाई। अपने बेटों को स्वादिष्ट भोजन खिलाने के लाड़ में वह भागी-भागी बाजार में गई और वही मोटी मछली मोल ले आई।

माता ने जब उस मोटी मछली को चीरा तो शिव और दत्त की आँखें फटी की फटी रह गई। जिस अनर्थ के मूल को वे सरोवर में डुबोकर प्रसन्न हुए थे, वही अनर्थ का मूल पुनः उनकी आँखों के सामने उनके ही घर में उपस्थित था- वही स्वर्ण पुरुष।

स्वर्ण पुरुष तो स्वर्ण पुरुष था- उसकी छाया तब मयाविनी थी। स्वर्ण पुरुष को देखते ही शिव की बहन को उस पर लोभ हो आया। उसने उसे अपने वस्त्रों में इस तरह छिपा लिया जैसे उसे वैसा करते हुए किसी ने न देखा हो। फिर वह स्वाभाविक ढंग से घर का कामकाज करने लगी। तभी माँ बोली- अरी, तूने अपने वस्त्रों में क्या छिपा लिया है? उस मछली को चीरने पर भीतर

से कोई पदार्थ निकला था न? मैं तो मछली के चीरा लगाते ही काम से भीतर चली गई थी। क्या था वह? बता दो।

कुछ भी तो नहीं था माँ, क्या बताऊँ? वह तो जब मैं मछली काट रही थी तब मेरी चूड़ियाँ खनखना रही थी। शायद तुमने वही आवाज सुनी होगी- निर्दोष बनती हुई बेटी ने उत्तर दिया।

अरी, इतनी भोली मैं नहीं हूँ। मछली में से तो कोई ठोस पदार्थ निकला था, क्या उसे ही तो तूने नहीं छिपा दिया है? माँ ने धमकाते हुए पूछा।

नहीं-नहीं, मैंने कुछ भी नहीं छिपाया है, माँ तू व्यर्थ ही में भ्रम कर रही है।

मेरा भ्रम व्यर्थ नहीं है। मैं तुझे अपने घर में निकला हुआ माल हजम नहीं करने दूंगी- कहते हुए माँ ने अपनी बेटी के वस्त्रों को जोर का झटका देकर खींचा और तभी वह स्वर्ण पुरुष खुलकर भूमि पर जा गिरा। भूमि पर गिरने से पहले खींचातानी में वह ऊपर उछला था और ऊपर से माँ के सिर पर जोर का आघात करता हुआ नीचे गिरा। माँ का सिर फट गया और वह नीचे गिर कर मर गई।

वह दृश्य भयंकर था। एक ओर माँ का मृत शरीर लहूलुहान हुआ पड़ा था तो दूसरी ओर रौद्र मुद्रा में बहन खड़ी थी तथा दोनों के बीच में पड़ा हुआ था

चमचमाता हुआ वह स्वर्ण पुरुष। बहन को जब होश आया और वह जोर से चीख पड़ी और फिर धाड़ मारकर विलाप करने लगी। कोलाहल सुनकर कई लोग इकट्ठे हो गए और आँखें फाड़-फाड़कर उस स्वर्ण पुरुष को बड़ी बारीकी से निरखने-परखने लगे। वे समझ नहीं पा रहे थे कि यह स्वर्ण पुरुष वहाँ कैसे आ गया और यह सारा कांड किस प्रकार घटित हो गया है?

शिव ने स्वर्ण पुरुष की सारी कहानी सबको सुनाई और यह विस्तार से बताया कि इस स्वर्ण पुरुष की छाया में किन-किन अनर्थों को घटते हुए स्वयं उसने देखा है। सब सुनकर स्तब्ध रह गए।

किन्तु शिव सोचता ही रहा- चिन्तन की गहराइयों में गोते लगाता रहा- यदि सारा संसार इसी स्वर्ण के पीछे पागल बना रहता है तो दुर्दशा होती रहेगी स्वर्ण लोभियों की? फिर भी स्वर्ण का मोह न छूटे और वैराग्य न उपजे तो उस मनःस्थिति को चिन्तनीय एवं दयनीय ही मानना चाहिए। शिव का मन वैराग्य भावों से रंग गया और उसने दीक्षा ग्रहण करके स्व-पर कल्याण का उत्थान मार्ग अपना लिया।

स्त्रोत- आवश्यक निर्युक्ति।

सार- स्वर्ण लोभ से सर्वनाश होता है।

❖ ❖ ❖

कैसे-कैसे घूमा त्रिकोण?

प्राचीनकाल में अंगदेश में एक ग्राम था। उसका नाम था संग्राम। उसमें एक अति सहृदय एवं सदाशयी व्यक्ति निवास करता था, वह था सुव्रत। अपनी श्रेष्ठ वृत्तियों एवं श्रेष्ठ प्रवृत्तियों के प्रभाव से सुव्रत अतीव लोकप्रिय था। उसके साथ जिसका भी व्यवहार पड़ता था, वह सदा सन्तुष्ट ही होता था।

विडम्बना यह थी कि ऐसे सदाचारी पुरुष की पत्नी दुराचारिणी थी। उसका नाम था प्रियमित्रा, जो और किसी की प्रिय मित्र हो सकती थी, किन्तु अपने ही लोकप्रिय पति की प्रिय मित्र नहीं थी।

एक बार संग्राम ग्राम में आतंककारी डाकू घुस आए। उन्होंने घरों को बुरी तरह से लूटा-खसोटा और जो कुछ जहाँ मिला- धन, सम्पत्ति, आभूषण और पशु आदि सबको क्रूरतापूर्वक छीन कर ले गए। इस लूट में प्रियमित्रा भी चली गई। वह अपने बहुमूल्य आभूषण

पहने अपने घर के चौक में बैठी हुई थी तभी डाकू उसके घर में घुसे। उन्होंने उसे सारे आभूषण खोलकर तुरन्त उन्हें सौंप देने का आदेश दिया- जल्दी से सारे आभूषण खोलकर हमें दे दो। तनिक भी देर की तो अच्छा नहीं होगा। हम सम्पत्ति लूटने आए हैं और सारे गाँव की सम्पत्ति लूट कर ले जाएंगे। हमें जल्दी है, देर न करो।

फिर भी प्रियमित्रा ने अपने आभूषण खोलने का कोई उपक्रम नहीं किया और डाकू नायक की ओर देखती रही और मुस्कुराती रही। डाकुओं का नायक सामान्य डाकू नहीं था। उसकी पूरी एक पल्ली (बस्ती) थी और वह उसका शासक था। इसी कारण उसे पल्लीपति कहा जाता था। उसका आदेश हो जाने पर भी यह कैसी औरत है, जो उसके ही सामने निःशंक बैठी मुस्कुरा रही है, पर अपने आभूषण खोलकर नहीं दे रही है? उसकी धृष्टता देखकर पल्लीपति क्रुद्ध हो उठा- अरी स्त्री, तूने मुझे कुछ समझा ही नहीं, क्या कहा मैंने, सुना या नहीं?

मेरे कान बहरे नहीं है, सब सुन लिया है- कहा प्रियमित्रा ने और मुस्कुराती रही।

मेरे कहने को क्या तुमने व्यर्थ माना है? एक ही

वार में सिर धड़ से अलग हो जाएगा। अगर मरना नहीं चाहती है तो तुरन्त अपने आभूषण खोल दे। मेरा कहना मान ले- पल्लीपति ने डपटकर कहा।

तुम्हारा कहना अधूरा है, उसे कैसे मान लूँ?

क्या मतलब?

तुम पल्लीपति भले होगे, पर मुझे तुम मूर्ख ही लगते हो।

सोच समझकर बोल स्त्री, तू कहना क्या चाहती है?

मुझे देखकर भी तुम समझ नहीं पा रहे हो, इसी कारण तो मैं तुम्हें मूर्ख मान रही हूँ।

क्रूर पल्लीपति के सामने बोलने की भी आज तक कोई हिम्मत नहीं कर सका था और यह स्त्री उसी के मुँह पर उसे मूर्ख कह रही है, कैसी है यह स्त्री? वह कुछ नरम पड़ा और पूछ बैठा- मैं मूर्ख हूँ तो अपनी ही अक्ल का नमूना बता दे।

तो बता ही दूँ। मेरी ओर देखो क्या मैं रूपवती हूँ?

हाँ, सो तो हो, पर उससे क्या?

जो धन को ही देखता हो और रूप को नहीं समझ पाता हो, वह क्या मूर्ख नहीं कहलाएगा?

पहेली न बुझाओ, जो कुछ कहना है, साफ-साफ कहो।

साफ बात यही है कि तुम मुझे आभूषणों समेत ही उठा ले चलो। तुम गठीले नौजवान मुझे भा गये हो और तुम हो कि मेरे संकेत को समझ तक नहीं पाए और प्रियमित्रा खिलखिला कर हँस पड़ी।

और तब पल्लीपति भी खिलखिला कर हँस पड़ा- अरे, वास्तव में मैं मूर्ख ही रहा। चलो, तुम्हें तो मैं अपनी चहेती पत्नी बनाकर रखूंगा।

पल्लीपति ने प्रियमित्रा का हाथ पकड़कर उसे उठाया और प्रेमपूर्वक अपने साथ ले चला।

इस तरह बन गया त्रिकोण-पति सुव्रत, पत्नी प्रियमित्रा और प्रेमी पल्लीपति। समझने की बात यही है कि यह त्रिकोण आगे कैसे-कैसे घूमा?

भाई सुव्रत, अब सवेरा होने को है। अब तक डाकू गाँव से जा चुके होंगे। चलो, अब चलकर अपने-अपने घरों को सम्भालते हैं कि किसका कितना धन लूटा गया- सुव्रत के एक साथी ने कहा।

डाकुओं के गाँव पर हमले के बाद कई नागरिक भयभीत होकर गाँव से भाग गए थे और अपने प्राण बचाने के लिये इधर-उधर छिप गए थे, उन्हीं नागरिकों में एक सुव्रत भी था। सबके साथ सुव्रत भी अपने घर की ओर चला।

अपने घर में आकर सुव्रत के होश ही गायब हो गये। अन्य सम्पत्ति तो लूटी ही, पर डाकू आभूषणों समेत उस की पत्नी प्रियमित्रा को भी लूटकर ले गए, यह देखकर खेद और क्रोध से सुव्रत पागल जैसा ही हो गया। लोगों की सांत्वना से जब उसने कुछ होश सम्भाला, तब भी उसकी पीड़ा रोष के साथ फूट ही पड़ी- वे दुष्ट डाकू मेरी पत्नी को भी ले गए- यह मैं कदापि सह नहीं पाऊंगा। मुझे अपनी पत्नी को छुड़ाने के लिए तो कुछ न कुछ करना ही पड़ेगा।

भाई सुव्रत, डाकुओं से लोहा लेना कोई आसान काम नहीं है। तुम अपना खयाल बदल दो- साथी ने सुझाव दिया।

तुम कैसी बात करते हो? मेरी पत्नी को डाकू ले गए और मैं कुछ न करुं? मैं डाकुओं की पल्ली की तरफ अभी ही जाता हूँ। हाय, प्रियमित्रा! सुव्रत सुबक-सुबककर रो पड़ा।

स्त्री मोह को त्याग दो भाई, वह तुम्हारे लिए तो कतई उचित नहीं है- साथी ने अव्यक्त संकेत दिया कि उसकी पत्नी पतिव्रता नहीं थी, किन्तु भोला सुव्रत उस तथ्य को जानता ही कहाँ था, जो उस संकेत को समझ लेता? वह अपनी हठ पर अड़ा रहा और साथी ने भी

उसे उसकी उस मनोदशा में उस अव्यक्त संकेत से अधिक कुछ कहना उपयुक्त नहीं समझा।

मैं अपनी पत्नी प्रियमित्रा को डाकुओं के पंजे से छुड़ाकर लेकर ही आऊंगा, चाहे मुझे उसके लिए कैसी भी कीमत चुकानी पड़े- ऐसा अपना निश्चय प्रकट करते हुए सुव्रत ने एक नंगी तलवार अपने हाथ में ली और संग्राम ग्राम से निकल गया।

लुकता-छिपता सुव्रत चोर पल्ली पहुँचा। वहाँ उसे एक बूढ़ी कुम्हारिन मिली। उसे उसने कुछ धन दिया और वह गुप्त रूप से उसके घर पर ठहर गया। बूढ़ी कुम्हारिन ने गुप्तरीति से ही उसकी पत्नी की पल्ली में खोजबीन की। सारी बात जानकर उसने सुव्रत से कहा- तुम्हारी पत्नी प्रियमित्रा यहाँ इसी पल्ली में है- मैंने पता लगा लिया है। लेकिन उसे पाना तुम्हारे लिए कठिन होगा क्योंकि हमारे पल्लीपति ने ही उसको अपनी पत्नी बनाकर अपने घर में रख रखा है।

सुव्रत यह सुनकर विचार में पड़ गया, फिर बोला- तुम मेरा एक काम और करो। तुम गुप्त रीति से प्रियमित्रा से मिलो और उसे मेरे यहाँ आने का संवाद दो। देखें, वह क्या कहती है?

कुम्हारिन पल्लीपति के घर पर तब गई, जब

वह वहाँ नहीं था। वह प्रियमित्रा से बोली- क्या तुम संग्राम ग्राम की रहने वाली हो और क्या तुम्हें डाकू वहाँ से बलात् उठा कर लाए हैं?

हाँ, लेकिन यह सब तुम क्यों पूछ रही हो?

मैं तुम्हारे लिए एक शुभ संवाद लेकर आई हूँ- कुम्हारिन ने कहा।

प्रियमित्रा आखिर धूर्त स्त्री थी। कुछ-कुछ समझकर उसने प्रसन्न होने का अभिनय किया और एक स्त्री के सामने उसकी निर्लज्जता प्रकट न हो, इस भाव से वह बोली- तो शीघ्र सुनाओ न वह शुभ संवाद। मेरा हृदय उसे जानने के लिए अधीर हो रहा है।

इसे कुम्हारिन ने उसकी निर्दोष सहमति मानी और कान के पास अपना मुँह ले जाकर फुसफुसाते हुए कहा- क्या तुम्हारे पति का नाम सुव्रत है?

हाँ, क्यों वे यहाँ पहुँच गए हैं?

वे यहाँ तुम्हें लेने के लिये पहुँच गए हैं, यही शुभ संवाद देने मैं यहाँ आई हूँ- वह उत्साहपूर्वक बोली।

धूर्ता का अनुमान सही निकला। उसे आशंका नहीं थी कि उसका सीधा-सादा सुव्रत चोरपल्ली तक उसको लेने पहुँच जाने का साहस करेगा। लेकिन अब जब वह आ ही गया है तो उसका काम तमाम ही करवा

देना चाहिए। ऐसा करना एक तरफ से तो यहाँ अधिक आसान रहेगा। उसने मन ही मन सारा षड़यंत्र रच लिया और ऊपरी प्रसन्नता जाहिर करते हुए कुम्हारिन को उसी तरह फुसफुसाकर उत्तर दिया– जाओ, तुम उन्हें कह देना कि जब घर पर पल्लीपति न हो तब वे यहाँ आ जाएँ। मैं उनके साथ चली चलूंगी।

सुनकर वृद्धा हर्षित हो उठी कि उसके प्रयास से एक दु:खी पति की समस्या का समाधान हो गया है। वह दौड़ी–दौड़ी घर पहुँची और उसने प्रियमित्रा का सन्देश उसके पति सुव्रत को पहुँचा दिया।

और हर्षित हुआ बेचारा सुव्रत भी। कौन कहता है कि उसकी पत्नी पतिव्रता नहीं है? डाकू बलात् उठा ले जाएँ तो एक अबला स्त्री क्या कर सकती है? पल्लीपति के आतंक के उपरान्त भी वह उसके साथ चल चलने के लिए तत्पर है। कितनी अच्छी है मेरी प्रियमित्रा? उसका मन हर्ष से नाच उठा कि कितनी सरलता से समाधान निकल आया है उसकी जटिलतम समस्या का। जब प्रियमित्रा स्वयं उसके साथ आने को उत्सुक है तो पल्लीपति के पंजे से भाग निकलने का सफल उपाय तो वह स्वयं ही खोज लेगा। अब उसे कुछ भी विशेष नहीं करना है। बस, उपयुक्त समय देखकर

वह पल्लीपति के घर पर पहुँच जाए और उपयुक्त समय पर वह पल्लीपति के घर पर पहुँच गया, जब प्रियमित्रा वहाँ पर अकेली ही थी। प्रियमित्रा ने भी अपने हिसाब से उसे उपयुक्त समय पर ही बुलाया था।

निश्चित समय पर जब सुव्रत वहाँ पहुँचो तो प्रियमित्रा ने उसका पूर्ण सत्कार किया, उसे भोजन करवाया तथा विश्राम कराने की दृष्टि से उसे अपने साथ पलंग पर लेकर बैठी। इतने में द्वार पर खटका हुआ। दोनों समझे कि पल्लीपति आ गया है। सुव्रत को छिपना और छिपाना आवश्यक था। जल्दी-जल्दी में कहाँ छिपाया जाता? प्रियमित्रा ने उसे उसी पलंग के नीचे छिपे रहने की सलाह दी, अतः सुव्रत उसी पलंग के नीचे सावधानी से छिप गया।

प्रियमित्रा ने द्वार खोला और पल्लीपति भीतर आ गया। उसने उसे भी भोजन कराया और साथ लेकर उसी पलंग पर आसन जमाया। सहज वार्ता करते हुए यकायक प्रियमित्रा ने पल्लीपति से पूछ लिया- प्राणप्रिय, यदि इस समय मेरे पति सुव्रत मुझे लेने के लिए यहाँ आ जाएँ तो आप उनके साथ कैसा व्यवहार करेंगे?

पल्लीपति मस्त तबीयत था, हँसते हुए बोला- अरी भागवान, यदि तेरा पति अभी यहाँ आ जाए तो मैं

उसका सत्कार करूंगा और तुझे उसके हाथ में सौंप दूंगा, आखिर हो तो तुम उसकी ही अमानत न।

प्रियमित्रा की भौहें तन गई कि यह मूर्ख अब भी ऐसी बात करता है। उसने रोष पूर्ण नेत्रों से उसे देखा और इतना ही कहा- क्या बोले?

वाह री प्रियमित्रा, तू तो नाराज हो गई। अच्छी बात है, मैं तुझे कभी भी तेरे पति को नहीं सौपूंगा, हमेशा अपनी प्रिया ही बना कर रखूंगा। चिन्ता न कर- हो-हो हँसते हुए पल्लीपति बोला।

तब प्रियमित्रा ने अपनी अंगुली से पलंग के नीचे का भाग दिखाते हुए ऐसा इशारा किया जिससे पल्लीपति समझ गया कि उसका पति वास्तव में यहाँ आया हुआ है और वह इसी पलंग के नीचे छिपा हुआ है। फिर क्या था? अपनी प्रेमिका की इच्छा का कोई भी प्रेमी उसी की आँखों के सामने निरादर कैसे कर सकता है जबकि अपराधी स्वयं उसकी प्रेमिका का पति हो?

पल्लीपति ने पलंग के नीचे से घसीटकर सुव्रत को बाहर निकाला। उस राक्षस के सामने सुव्रत क्या कर पाता? उसने सुव्रत को चमड़े के पट्टे से कसकर बांधा और कोड़े से पीट-पीटकर अधमरा बना दिया। उसके घर के पास ही एक गहरी खाई थी, उसने बंधे हुए सुव्रत

को मरा जानकर उसी खाई में फैंक दिया।

खाई में पड़े-पड़े ठंडे पानी के स्पर्श से जब सुव्रत की चेतना लौटी तो उसने पाया कि उसके बंधन टूट चुके हैं और वह वहाँ से भाग निकलने के लिए स्वतंत्र है। वहाँ कुछ ऐसे जन्तु थे, जिन्होंने स्थान-स्थान पर उस चमड़े के पट्टे को कुतर डाला था और उसके शरीर के कसे हुए सारे बंधन खुल चुके थे। वह जल्दी से उठा और अपने स्थान पर चला गया।

एक रात को सुव्रत अपने हाथ में नंगी तलवार लेकर किसी तरह पल्लीपति के घर में घुसा। उसने देखा कि पल्लीपति गहरी नींद में सोया पड़ा है, पर प्रियमित्रा जाग रही है। वह उसके पास पहुँच गया और भय दिखाते हुए बोला- उठो और इसी समय मेरे साथ चलो। जरा भी आवाज की तो पहले तुम्हारा और फिर तुम्हारे इस प्रेमी का सिर एक ही वार में धड़ से अलग कर दूंगा। एक पल की भी देर न करो।

प्रियमित्रा के सामने कोई उपाय नहीं था। लाचार वह तुरन्त उठी और सुव्रत के पीछे हो गई, लेकिन उसका मन तो पल्लीपति में ही अटका हुआ था, अतः इस आशा से वह अपने वस्त्र की चिंदियाँ फाड़-फाड़कर कर मार्ग में डालती रही कि जगते ही वह जब उसे

खोजने के लिए निकलेगा तो उसे पाने का सही मार्ग वह देख लेगा। यही आशा थी कि पल्लीपति आकर उसे अवश्य ही सुव्रत से छुड़ा लेगा।

सुव्रत चलते-चलते निश्चिन्त होने लगा, क्योंकि उसके साथ चलने का उसने कोई प्रत्यक्ष विरोध नहीं किया था और तब से बराबर उसके पीछे चली आ रही थी। उसने उसे चिंदियाँ डालते हुए भी नहीं देखा था। रात का अंधेरा था और उसे आगे से आगे चलते रहने की धुन सवार थी ताकि वह जल्दी से जल्दी पल्लीपति की पहुँच से बाहर हो जाए।

प्रातःकाल हुआ, कुछ दिन चढ़ आया। वे दोनों काफी दूर पहुँच गए थे। राहत की साँस लेते हुए सुव्रत ने पीछे मुड़कर देखा तो बहुत दूरी पर उसे पल्लीपति आता हुआ दिखाई दिया। प्रियमित्रा ने भी उसे देखा। जहाँ सुव्रत उसे देखकर चिन्तित हो उठा और रक्षा का उपाय सोचने लगा, वहाँ प्रियमित्रा चिंदियाँ बिखेरने की अपनी योजना की सफलता पर झूम उठी कि अब सुव्रत से वह अवश्य ही मुक्त करा ली जाएगी।

सुव्रत ने प्रियमित्रा का हाथ पकड़ा और खींचते हुए उसे पास के वंश वृक्षों की झुरमुट में ले गया और दोनों इस तरह छिप गए कि पल्लीपति को दिखाई न दें।

फिर भी प्रियमित्रा ने समय पर कुछ संकेत कर ही दिया कि पल्लीपति वहाँ पहुँच गया। उसने सुव्रत के हाथ पैरों में कीलियाँ ठौंकी, उसे बुरी तरह से पीटा और अधमरा कर दिया। प्रियमित्रा खुशी-खुशी उसके साथ हो गई और वह उसे लेकर पल्ली चला गया।

और वहीं वंश वन में पड़ा रह गया आहत एवं मूर्छित सुव्रत। वहाँ कोई नहीं था, जो उसकी सहायता करता। न जाने कहीं से एक बन्दर आया, उसने सुव्रत की कीलियाँ निकाली, उसके घावों पर जड़ी-बूटियाँ घिसकर लगाई, शीतल जल से उसे सचेत किया और अपनी सेवा सुश्रूषा से स्वस्थ बनाया।

सुव्रत के आश्चर्य का पार नहीं था- स्वयं की पत्नी उसके साथ ऐसी प्रवंचना कर गई, उसकी आसन्न मृत्यु पर भी उसे दया नहीं आई और यह पशु-अनजान बन्दर कैसा विचित्र है, जिसने मनुष्य से भी बढ़कर उसकी सेवा की है और उसे एक प्रकार से नया जीवन दिया है। संसार की वस्तुतः कैसी विचित्रता है- अर्धांगिनी मानी जाने वाली पत्नी की ऐसी घृणित मनोदशा और वह उसके पीछे-पीछे घूमकर अपने प्राणों के मूल्य पर भी उसके उद्धार के लिए सक्रिय था? उसका चिन्तन अधि काधिक अन्तर्मुखी होता गया- संसार से उसे वैराग्य हो

आया। तभी उसने बन्दर से पूछा- हे मित्र, तुमने पशु होकर भी मेरी ऐसी सेवा क्यों की?

आपने मुझे पहचाना नहीं। पूर्वजन्म में मैं आपका पड़ोसी सिद्ध नामक वैद्य था। अन्तिम समय में आपने ही मुझे ज्ञानदान दिया था। मैं आपका ऋणी हूँ- बन्दर बोला।

भाई, ऋण तो इस समय तुम्हारा मेरे ऊपर है क्योंकि तुमने मुझे नया जीवन दिया है। अभी तो यह बताओ कि क्या मैं तुम्हारे किसी काम आ सकता हूँ?

हाँ, वह काम भी है। मैं पाँच सौ बन्दरियों के विशाल परिवार के साथ वन में सुख से रहता था लेकिन एक दिन एक क्रूर और बलिष्ठ बन्दर वहाँ आ गया, लड़कर उसने मुझे वहाँ से भगा दिया और वही परिवार का स्वामी बनकर बैठ गया है। उससे मुझे छुटकारा दिलाओ।

वैसा ही मामला था, सुव्रत का रोष भड़क उठा और उपकार तो था ही, उसी समय वह नंगी तलवार लेकर बन्दर के साथ चल पड़ा। वहाँ पहुँचकर उसने एक ही वार में उस बलिष्ठ बन्दर का काम तमाम कर दिया। उसकी सेवा करने वाला बन्दर आनन्द से झूमकर उसका आभार प्रकट करने लगा।

किन्तु सुव्रत का रोष शान्त नहीं हुआ। अपने

हाथ में रक्त सनी तलवार थामे ही वह पल्लीपति के घर पहुँचा। वह गहरी नींद में सो रहा था, एक ही प्रहार में उसने उसके दो टुकड़े कर दिए और प्रियमित्रा को साथ लेकर वापिस चला। प्रेमवश उसे वह मार न सका।

सौभाग्य से मार्ग में मिल गए एक मुनिराज। उपदेश देकर उन्होंने सुव्रत की तलवार छुड़ाई, उसकी सारी कथा सुनी और संसार की विचित्रता एवं विषमता पर प्रकाश डाला। सुव्रत का हृदय जाग उठा, ज्ञान का प्रकाश फैला और प्रियमित्रा को त्यागकर उसने वहीं उनके पास दीक्षा अंगीकार कर ली।

स्त्रोत- आवश्यक निर्युक्ति।

सार- ज्ञान के प्रकाश में ही संसार को सही देखा जा सकता है।

❖ ❖ ❖

कस्तूरी मृग की पूंछ

प्रिये, तुम किसी भी कारण उदास या उद्विग्न बनो, यह मैं कदापि सहन नहीं कर सकता। तुम नहीं जानती कि मैं तुम्हें कितना प्रेम करता हूँ, शायद उस प्रेम का घनत्व मैं भी बता नहीं सकता, केवल महसूस ही कर सकता हूँ- भाव विह्वल होते हुए धन्य ने अपनी पत्नी श्रीमती से पूछा।

धन्य उज्जयिनी के सुधन नामक सेठ का पुत्र था। उसकी माता का नाम सुभद्रा था। वह अपने माता-पिता का अत्यन्त प्रिय पुत्र था, फिर भी उसका अपना प्रेम अपनी पत्नी के लिए अतिशय था। उसका यही विश्वास था कि वह भी उसे उतना ही चाहती है जितना वह उसे चाहता है। अपने पत्नी प्रेम के विषय में तो वह एकदम स्पष्ट था और सोचता था कि उसकी किसी भी इच्छा को पूरी करने के लिए वह कुछ भी कर गुजर सकता है।

नहीं पतिदेव, ऐसी उदासी की कोई बात नहीं है। वैसे ही मन में एक इच्छा उभर आई थी- श्रीमती ने संकेत इस तरह दिया जैसे उस इच्छापूर्ति के लिए उसका कोई खास हठ नहीं है।

झूठ क्यों कह रही हो? तुम अवश्य अनमनी हो और संभवतः इसी इच्छा के कारण। तुम निःसंकोच होकर अपनी इच्छा बता दो, मैं कठिन जोखिम उठाकर भी उसे अवश्य पूरी करूंगा। हाय, तुम मुझे कितनी प्रिय हो?

मैं इसी कारण तुम्हें अपनी इच्छा नहीं बताना चाहती कि उसे पूरी करना चाहोगे तो दीर्घकाल तक यहाँ से दूर भी रहना होगा और खतरा भी झेलना होगा और मैं नहीं चाहती कि तुम मुझसे एक पल के लिए भी दूर रहो- इस तरह बोली श्रीमती, जैसे उसके प्रेम की सच्चाई में कोई कसर ही नहीं है।

मैं तुम्हें हर हालत में प्रसन्न देखना चाहता हूँ। तुम प्रसन्न नहीं तो मेरे लिए एक क्षण निकालना भी कठिन होगा। उस कठिनाई से इच्छापूर्ति की कठिनाई कभी भारी नहीं होगी। तुम अपनी इच्छा बता ही दो- धन्य ने अतीव आग्रह के साथ कहा।

श्रीमती ने तब संकोच नहीं किया, बता ही दिया- मैं कस्तूरी मृग की पूंछ का माँस खाना चाहती हूँ। इसके लिए मेरी इच्छा प्रबल बन गई है।

कस्तूरी मृग? कहाँ मिलेगा ऐसा मृग? तुम बताओ, मैं उस स्थान पर जाकर उसे अवश्य तुम्हारे लिए ले आऊंगा।

वह ऐसे स्थान पर है, जहाँ से उसे लाना तुम्हारे लिए गहन कष्टकर होगा। इसलिए मैं कहती हूँ कि तुम उसे रहने ही दो। धीरे-धीरे उदासी मिट ही जाएगी।

तुम बता दो, मैं उसे अवश्य ही लाकर रहूंगा।

वह कस्तूरी मृग राजगृही के राजा श्रेणिक के राज प्रासाद में क्रीड़ा के लिए लाया गया है। तुम्हें वहीं जाकर कुशलता एवं साहस के साथ उस कस्तूरी मृग को प्राप्त करना होगा- श्रीमती ने विवरण सुनाकर धन्य को साहस बंधाया कि उसे इस काम में अवश्य ही सफलता प्राप्त होगी, इस विचार से कि किसी भी बहाने वह घर से लम्बे समय के लिए बाहर तो रहे।

मेरी प्रिय श्रीमती, तुम्हारी प्रसन्नता के लिए मैं इसी समय प्रस्थान करता हूँ, तुम चिन्ता न करो। कार्य सम्पन्न करके मैं शीघ्र लौट आऊंगा- धन्यकुमार ने निर्दोष रूप से अपनी पत्नी को आश्वस्त किया।

तब धन्य चल पड़ा राजगृही जाने वाले राजपथ पर। वह राजगृही पहुँचा तो पहले बाहर के उद्यान में ठहर गया ताकि वहाँ कुछ समय के लिए विश्राम कर ले। वह बुरी तरह थक भी गया तो उसे गंभीरतापूर्वक वैसी युक्ति भी सोच निकालनी थी कि वह वहाँ के राज

प्रासाद में कस्तूरी मृग को पकड़ लेने में सफल बन जाए।

उद्यान में एक वृक्ष के नीचे बैठकर वह सुस्ताना चाहता ही था कि उसने देखा एक अतिशय लावण्यमती वेश्या अपनी सेविकाओं के साथ क्रीड़ा करने के लिए उद्यान में प्रविष्ट हो रही थी। उसकी आँखें ठगी-सी रह गई उस लावण्य को निरखकर- क्या इतना मनमोहक लावण्य ही हो सकता है? लावण्य के आकर्षण से ही तो वह अपनी श्रीमती को इतना चाहता है, किन्तु इस लावण्य के सामने उसका लावण्य तो कहीं टिकता ही नहीं है। वह एकटक उस ओर ही देखता रहा।

देखते-देखते ही वह चौंककर खड़ा हो गया। एक दु:खद घटना एक पल में ही घट गई। आकाश मार्ग से उसी समय अपने विमान द्वारा कोई विद्याधर जा रहा था। वहीं से उसकी दृष्टि उस वेश्या पर पड़ी। उसके अपूर्व लावण्य पर वह मोहित हो गया। तत्काल उसने अपने विमान को नीचे उतारा और पल भर में वेश्या को उसमें बिठाकर वह वापिस ऊपर उड़ गया।

इस आकस्मिक अपहरण को धन्य देख नहीं सका। उसने तुरन्त अपना धनुष बाण उठाया और एक तीर छोड़कर उस विद्याधर को मार गिराया। विद्याधर के मरते ही विमान उलट गया तथा वेश्या नीचे सरोवर में गिर पड़ी। उतनी ही स्फूर्ति से धन्य सरोवर में कूद पड़ा

और वेश्या को सुरक्षित रूप से किनारे पर ले आया। उस अपरिचित युवक के उसकी जीवन रक्षा के लिए दिखाए गए अदम्य साहस पर वह वेश्या मुग्ध हो गई। इसके लिए उसने युवक का हार्दिक आभार माना और पूछा- युवक तुम कहाँ से और क्या प्रयोजन लेकर यहाँ आए हो?

मैं उज्जयिनी से आ रहा हूँ और यहाँ के महाराज के राज प्रासाद में रहे एक कस्तूरी मृग को प्राप्त करना चाहता हूँ- यह बताकर धन्य ने अपने उस प्रयोजन की सारी पृष्ठभूमि वेश्या को बता दी।

तो तुम अपनी पत्नी के लिए कस्तूरी मृग की फूंछ लेने के लिए आए हो- वेश्या ने कटाक्षपूर्ण स्वर में कहा।

हाँ, बात तो यही है, पर तुम इसी बात को इतने टेढ़े ढ़ंग से क्यों बोल रही हो? धन्य ने विस्मित होकर पूछा।

क्योंकि तुम्हारी पत्नी ही टेढ़ी है, जो उसने तुम्हें आग में धकेल दिया है- तब भी वेश्या का स्वर टेढ़ा ही था।

तुम मेरी पतिव्रता पत्नी के सच्चे प्रेम का अनुभव नहीं कर पाओगी। मैं आग में कूदकर भी उसकी इच्छा को पूरी करूंगा- धन्य ने गर्व के साथ कहा।

एक स्त्री ही किसी स्त्री के मन की बात को भली प्रकार से जान सकती है, लेकिन इस समय उस बात को जाने दो। अभी तो मेरे साथ चलो। इस नगर में तुम्हारा कोई परिचित नहीं है, मेरे ही साथ ठहर जाओ।

धन्य वेश्या के साथ उसके आवास पर पहुँच गया। वेश्या के लावण्य के प्रति उसका मन आकर्षित हो गया था, अतः उसने अपने साथ ठहरने के वेश्या के प्रस्ताव को बिना किसी ना नुकूर के मान लिया था। वह भोजनादि से निवृत्त हो गया तो वेश्या ने उसे विश्राम करने की सलाह दी और बताया- कल श्रेणिक की राज्य सभा में मेरे नृत्य का आयोजन है, तुम मेरे साथ चलना। यह बात सुनकर तो धन्य हर्षित हो उठा कि उसे अपनी प्रिय पत्नी की इच्छापूर्ति के पराक्रम का अवसर तब तो कल ही प्राप्त हो जाएगा। वह उसी हर्षावेग में विश्राम करने के लिए चल दिया।

राजगृही के महाराज श्रेणिक की राज्यसभा में जब वह वेश्या अपने कलापूर्ण नृत्य का प्रदर्शन कर रही थी तब धन्य भी उसके दल के साथ ही बैठा हुआ था। उसी समय उसे दूर आंगन में कस्तूरी मृग क्रीड़ा करता हुआ दिखाई दिया। वह अपने आपको रोक नहीं सका। धीरे से उठकर सबकी नजर बचाता हुआ वह आंगन में पहुँच गया। सभी नृत्य देखने में तल्लीन थे। आंगन में पहुँचकर वह मृग को पकड़ने ही वाला था कि राजा के सेवकों ने उसे पकड़कर बांध दिया और नृत्य समाप्त हो, तब तक उसे राजा के समक्ष प्रस्तुत करने की वे प्रतीक्षा करने लगे।

धन्य की वह हरकत वेश्या की दृष्टि से नहीं

बच सकी थी। उसने नृत्य करते-करते सब देख लिया था और यह भी कि दण्ड के लिए उसे शीघ्र महाराज के समक्ष प्रस्तुत किया जाएगा।

ज्योंही नृत्य समाप्त हुआ, महाराजा ने वेश्या का साधुवाद किया तथा अपनी पूर्ण प्रसन्नता व्यक्त की। वह बोला- हम तुम्हारी कला से प्रसन्न हुए। तुम एक नहीं, हमसे तीन वर मांगो।

उसी समय सेवक धन्य को राजा के समक्ष लेकर आए और उसका अपराध बताया। राजा उग्र रूप से क्रुद्ध हो उठा- इतना गंभीर अपराध कि राज प्रासाद में आकर उसने हमारे प्रिय मृग को चुराने का घृणित दुस्साहस किया। यह अपराध अक्षम्य है। जाओ इसे मृत्युदण्ड दिया जाता है- राजा ने घोषणा कर दी। धन्य की आँखों के आगे गहरा अंधकार छा गया।

तभी वेश्या आगे आई और उसने नम्रतापूर्वक राजा से प्रार्थना की- राजन्, मुझे आपने प्रसन्न होकर जो तीन वर प्रदान किए हैं, उनमें से पहला यह है कि इस युवक को जीवन दान दिया जाए।

यह तुम्हारा कौन होता है? राजा ने पूछा।

महाराज, यह परदेशी है और अपनी पत्नी द्वारा दी गई पीड़ा को भोगने के लिए यहाँ आया है। मेरे यहाँ तो मात्र ठहरा हुआ है, किन्तु मेरी जीवन रक्षा भी इसने की

है और इसका यह ऋण मेरे ऊपर है- उस वेश्या ने कहा।

अच्छा, तुम्हारा यह पहला वर तुम्हें दिया। शेष दो वर क्या हैं?

मैं उन्हें फिर कभी मांग लूंगी कहकर वेश्या ने वहाँ से विदा ली। धन्य को उसने अपने साथ ले लिया। घर पहुँचकर उसने वेश्या से पूछा- तुमने मेरी पत्नी के लिए ऐसी बात राजा के सम्मुख क्यों कही?

इसलिए कि तुम्हारी पत्नी का सही चित्र मैं तुम्हें दिखाना चाहती हूँ, जिस पर तुम्हारा ऐसा दृढ़ विश्वास है- वेश्या ने फिर यह बात कटाक्षपूर्ण स्वर में कही।

धन्य को उसका वह ढंग से फिर चुभ गया। रूठकर धन्य बोला- अच्छा, मेरा काम तो हुआ नहीं, पर अब मैं अपने घर जाना चाहूंगा।

तो चलो, मैं भी तुम्हारे साथ चलती हूँ ताकि तुम्हारी पत्नी का चरित्र नग्न रूप में मैं तुम्हें दिखा सकूँ। तब धन्य और वेश्या दोनों उज्जयिनी के लिए चल दिए।

उज्जयिनी के बाहर पहुँचकर धन्य ने वेश्या को उद्यान में ही रुकने को कहा और स्वयं अपने घर पर पहुँचा। रात का अंधेरा फैलने लगा था, वह चुपचाप अपने घर में घुसकर एक अंधेरे कोने में छिपकर बैठ गया। कुछ समय बाद श्रीमती का एक प्रेमी वहाँ पर आया। अति हर्षित होकर श्रीमती ने उसका सत्कार

किया। फिर दोनों ने जी भरकर काम क्रीड़ाएँ की। जब वे दोनों थककर गहरी नींद में सो गए तो धन्य ने बड़ी सफाई से श्रीमती के प्रेमी के शरीर के तलवार से दो टुकड़े कर दिए कि श्रीमती को पता तक नहीं चल पाया। धन्य पुनः वहीं छिप गया।

श्रीमती जगी और उसने प्रेमी को मरा हुआ पाया तो वह अतीव खेद ग्रस्त हुई। फिर अपने पाप को ढकने के प्रयास में लग गई। वहीं चौक में उसने एक गड्ढ़ा खोदा और उसमें प्रेमी का मृत शरीर रखकर उसे वापिस भर दिया। उस पर उसने एक छोटा-सा चबूतरा बनाया। उसके पास बैठकर उसकी याद में उसने आँसू भी बहाए।

धन्य अंधेरे-अंधेरे ही चुपचाप घर से निकल उद्यान में पहुँच गया और उसने वेश्या को सारी घटना कह सुनाई और कहा- तुमने मेरी पत्नी को प्रारम्भ में ही भली-भांति पहचान लिया था। मेरी ही भूल थी कि मैं नहीं समझ सका। आज वह सब कुछ सत्य सिद्ध हो गया है। मेरा मन घृणा से भर उठा है, अब मैं अपने घर में नहीं रह पाऊंगा। मैं तुम्हारे ही साथ राजगृही चलना चाहता हूँ।

यही ठीक है, मेरे साथ चले चलो, वेश्या धन्य को पुनः अपने साथ राजगृही ले गई। वेश्या की स्नेह छाया में वह काफी समय तक वहीं रहा, किन्तु एक बार उसे उसके घर की याद ने सताया तो ऐसा कि वह वहाँ

रुक नहीं सका। वेश्या से पूछकर वह उज्जयिनी लौट गया।

घर पहुँचा तो उसकी पत्नी श्रीमती ने उसका सत्कार किया जो उसे सर्वथा कृत्रिम लगा, लेकिन बोला वह कुछ नहीं। प्रत्यक्ष में उसने यही कहा- प्रिये, बहुत समय भी लगा, लेकिन मैं तुम्हारी इच्छापूर्ति का कार्य नहीं कर सका। इसका मुझे बहुत खेद है।

श्रीमती उस विषय को टालते हुए बोली- पहले मैं भोजन तैयार करती हूँ। आप भोजनादि से निवृत हो लें, फिर बातें करेंगे। यह कहकर वह भोजन बनाने बैठ गई। जब भोजन करने के लिए बैठा तो भोजन परोसने से पहले उसने उसके देखते-देखते चबूतरे पर कुछ भोजन रखकर बलि चढ़ाई। फिर वह प्रतिदिन ऐसा ही करती रही। उसे देखते हुए धन्य का क्रोध भड़कने लगा। एक दिन उसने रोषपूर्वक अपनी पत्नी को आदेश दिया- आज मेरे लिये घेवर का विशेष भोजन तैयार करो और मैं साफ कह देता हूँ कि मेरे खाने से पहले वह भोजन किसी अन्य को कतई मत देना।

श्रीमती सब समझ गई, चाहे धन्य ने स्पष्ट रूप से नहीं कहा था। परन्तु उसे अपने प्रेमी के साथ अतिशय प्रेम था और उसने मन में निश्चय कर लिया कि कुछ भी हो जाए, पहले वह बलि भोजन अपने प्रेमी के चबूतरे पर ही चढ़ाएगी। कड़ाही में घी पूरी तरह गर्म हो गया

तो वह घेवर का घोल उस कड़ाही में छिटकने लगी।

धन्य सावधान था कि वह चबूतरे पर बलि भोजन न चढ़ावे, लेकिन वह उससे भी अधिक सावधान कि बलि भोजन चढ़ाना ही है। उसने जानबूझ कर पहले घेवर को जलने दिया और जला हुआ बताकर घेवर को चबूतरे पर रखने लगी जैसे कि उसे फैंक रही हो। धन्य ने उसके हाथ से घेवर छीन लिया। तब तो श्रीमती घायल सिंहनी जैसी हो गई। उसने गरम घी की कड़ाही उठाई और सारा घी धन्य पर छिड़क दिया। धन्य बुरी तरह जल गया। उसका हृदय अथाह पीड़ा से रो पड़ा। अपनी ही पत्नी के ऐसे दुष्चरित्र को देखकर। उसने संकल्प कर लिया कि स्वस्थ होकर वह अवश्यमेव दीक्षा अंगीकार कर लेगा।

स्त्रोत -आवश्यक निर्युक्ति।

सार-मोहपूर्ण संसार की माया अकल्पनीय होती है।

❖ ❖ ❖

कामदेव का अवतार या .....

पधारिए श्रेष्ठिवर, आपके मेरे निवास पर पधारने से मैं धन्य हुआ। जैसा नाम वैसा ही गुण है आपका। परम सुदर्शनीय हैं आप- कहते हुए कपिल पुरोहित ने अपने मित्र सुदर्शन सेठ का हृदय से स्वागत किया।

वास्तव में सुदर्शन सेठ सुदर्शन ही थे, जो भी उन्हें देखता, पहली ही दृष्टि में वह उनके भव्य व्यक्तित्व एवं शारीरिक सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाता। किन्तु उनकी सुदर्शनीयता इस बिन्दु पर समाप्त नहीं, अपितु प्रारम्भ होती थी। जब कोई आगे अपनी सूक्ष्म दृष्टि उनके अन्त:करण तक फैलाता तो वहाँ का सौन्दर्य तो उसे दिव्य ही दिखाई देता। उस पर उसका न्यौछावर हो जाने का मन हो जाता था। उनके आत्मिक सौन्दर्य की सुदर्शनीयता तो अवर्णनीय थी।

सुदर्शन सेठ चम्पानगरी के प्रमुख श्रेष्ठि तथा गणमान्य नागरिक थे। वे अत्यन्त समृद्धिशाली किन्तु

साथ ही गूढ़ तत्वज्ञानी तथा श्रेष्ठ सदाचारी थे। उनकी पत्नी मनोरमा उनके समान ही अन्दर बाहर से लावण्यवती थी। उनके चार पुत्र, उनकी वधुएँ तथा हँसता-खेलता वृहद् परिवार था। चम्पानगरीवासी यह समझते थे कि धरती पर रहते हुए भी वे स्वर्ग तुल्य सुखों में रमण करते हैं।

चम्पानगरी के राजा दधिवाहन थे तथा महारानी थी अभया। राजपुरोहित कपिल के साथ श्रेष्ठि की गहरी मित्रता थी। इसी कारण कपिल ने उन्हें अपने यहाँ भोजन पर आमंत्रित किया था। स्वागत करने में कपिल पुरोहित की पत्नी कपिला भी साथ में थी।

दोनों मित्रों ने साथ ही भोजन किया एवं बड़ी देर तक वे कई विषयों पर वार्तालाप करते रहे। यह पहला अवसर था जब कपिला को सुदर्शन सेठ का इतना निकट का तथा इतने समय का सम्पर्क प्राप्त हुआ। वह तो सुदर्शन सेठ के प्रति भीतर ही भीतर बुरी तरह से व्यामोहित हो गई। उसे लगा कि सेठ का सौन्दर्य इतना आकर्षक है जैसे वह कामदेव का ही अवतार हो। उसका मन पागल हो उठा सेठ को सशरीर प्राप्त कर लेने के लिए, लेकिन उस समय उसने अपने भीतर के भाव किसी भी रूप में प्रकट नहीं होने दिए और वैसा करने का अवसर भी नहीं था।

सेठ सुदर्शन कपिल के यहाँ आए और चले गए, किन्तु कपिला के सिवाय किसी ने नहीं जाना कि उस घर में अपने पीछे वे क्या छोड़ गए थे ? वे छोड़ गए थे कपिला के लिए अपार व्याकुलता, एक-एक पल की जटिलता और मोहदशा की असह्य व्यथा।

सेठ साहब, कपिल पुरोहित गंभीर रूप से रोगग्रस्त हो गए हैं तथा कपिला जी ने आपको इसी समय बुलाया है- कपिला की सेविका ने सुदर्शन सेठ के घर आकर करुणवाणी में निवेदन किया।

बहुत समय हो गया था कि दोनों मित्रों का मिलन नहीं हुआ था और इस समय जब मित्र रूग्ण है, उन्हें बुलावा आने पर तो मित्र को देखने के लिए जाना ही चाहिए, यह सोचकर सेठ ने सेविका को कहा- तुम जाओ, मैं शीघ्र ही वहाँ पहुँच रहा हूँ।

कपिल पुरोहित के घर पहुँचने पर वही सेविका सेठ को एक भीतरी कक्ष में ले गई, जहाँ कोई नहीं था, मात्र पलंग पर सफेद चादर ओढ़े कोई सो रहा था। सेठ ने सोचा- मित्र ही मुँह ढककर सो रहा होगा। वे पलंग तक आगे बढ़ गए। सेविका ने बाहर जाते हुए कक्ष के द्वार को बाहर से बन्द कर दिया था जो सेठ ने नहीं देखा। सेठ के मुँह पर से जो चादर हटाई तो वे स्तब्ध

रह गए। वह कपिल नहीं कपिला थी- सोलह शृंगारों से सजी हुई, मोहिनी कामिनी बनी हुई। वह तुरन्त उठ खड़ी हुई और सेठ से प्रणय निवेदन करने लगी। सेठ अचिन्तनीय मन:स्थिति में फँस गए- यकायक तो किंकर्त्तव्य विमूढ़ ही हो गए। फिर वे अपने विचारों में स्थिर हुए और रोषपूर्ण स्वर में बोले- आपने ऐसी कुटिल रीति से मुझे यहाँ क्यों बुलाया? बुलाकर ऐसे अशुभ भाव प्रकट कर रही हैं- आपको लज्जित होना चाहिए।

प्रेम में लज्जा कैसी? आप इन्द्र हैं तो क्या मैं आपको इन्द्राणी जैसी नहीं लगती? आप पहले यहाँ पधारे थे, उसक पल से ही मैंने एक-एक पल मैंने कितनी आकुल-व्याकुल होकर व्यतीत किया है, उस पीड़ा को मैं ही जानती हूँ। अब तो मेरी यह पीड़ा दूर होनी ही चाहिए- कपिला नि:संकोच बोलती रही।

सेठ द्वार की ओर मुड़े कि यहाँ से चले जाएँ, पर द्वार बाहर से बन्द। अपनी जटिल स्थिति देखकर वे सोच में पड़ गए, कुछ भी बोल नहीं पाए।

मेरे सुदर्शन, अब चुप रहने से काम नहीं चलेगा। या तो मेरी मनोकामना पूरी कीजिए या फिर अप्रतिष्ठा भोगने के लिए तैयार हो जाइए- मैं अब चिल्ला पड़ूंगी- कपिला ने धमकी दी।

सेठ घबराए नहीं, कुछ सोचा और दबे हुए स्वर में कहने लगे- तुम्हारा ऐसा पागलपन देखकर मैं लाज से मरा जा रहा हूँ। समझ में नहीं आ रहा कि तुम्हें मेरी असली बात कैसे कहूँ ?

असली बात? वह क्या है? लेकिन आपका कोई भी बहाना मैं सुनना पसन्द नहीं करूंगी।

असली बात यह है कि मैं तो पुरुष ही नहीं हूँ- पुरुषत्वहीन हूँ। मेरी सन्तानें भी असल में मेरी नहीं हैं। मैं ऐसा सुन्दर फूल हूँ, जिसमें सुगन्ध नहीं है- सेठ ने हांफते-हांफते कहा।

धत् तेरे की, ऐसा रूप और पौरुषहीन? मैं भी किस नपुंसक से फँस गई। चले जाइए- उपेक्षा से कपिला बोली।

लेकिन वादा करो कि इस रहस्य को तुम रहस्य ही बनाए रखोगी, कभी किसी पर प्रकट नहीं करोगी। मेरी सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रश्न है।

अच्छी बात है। यह गोपनीय बात मैं किसी पर प्रकट नहीं करूंगी, लेकिन आप भी वादा करें कि आपभी इस तथ्य को सदा गोपनीय रखेंगे कि मैंने आपको यहाँ बुलाया और प्रणय निवेदन किया।

ऐसा ही होगा बहिन, तुम निश्चिन्त रहो और

मन ही मन अपनी सच्चरित्रता की सफल सुरक्षा पर हर्षित होते हुए सेठ सुदर्शन अपने घर चले गए।

चम्पानगरी के उद्यान में बसन्तोत्सव का आयोजन किया गया था। अपने सुन्दर-सुन्दर परिधानों में सारे नगरवासी वहाँ एकत्रित हुए थे तथा विविध प्रकार के आमोद-प्रमोदों में निमग्न थे। सुदर्शन सेठ भी अपने पूरे परिवार के साथ उद्यान में इधर-उधर विचरण कर रहे थे।

तभी रथ पर आरूढ़ होकर महारानी अभया भी वहाँ पहुँची। उसके साथ कपिला भी थी। अभया की दृष्टि पड़ी सेठ सुदर्शन के मनमोहक व्यक्तित्व पर और फिर उसके पूरे सुदर्शनीय परिवार पर। उसकी आँखें उन्हीं पर टिकी रह गई। वह उन्हें पहचान नहीं पाई, इस कारण कपिला से कहने लगी- देखो कपिला, कामदेव के साक्षात् अवतार के समान यह अलौकिक सौन्दर्य वाला पुरुष कौन है? मेरा मन तो इस पर मुग्ध हो गया है।

कपिला कुटिल कटाक्ष करते हुए हँसी और घृणापूर्ण स्वर में बोली- जिस पुरुष पर आप मुग्ध हो रही हैं रानीजी, वह तो पुरुष ही नहीं है। यह नगर का सुदर्शन सेठ है- नाम से सुदर्शन और काम से नपुंसक।

और इस सेठ का यह इतना बड़ा परिवार? ऐसी लावण्यवती सेठानी तथा ऐसे रूपवान पुत्र? ये सब क्या है- झुंझलाकर रानी बोली।

सारा परिवार पैदा हुआ होगा किसी कामुक पुरुष से, जिस पर सेठानी रीझ गई होगी- कपिला व्यंग्य पूर्वक ही बोली।

किन्तु अभया तो क्रुद्ध हो उठी- तू तो पूरी मूर्खा लगती है कपिला, इस कामदेव के अवतार को तू समझ ही नहीं पाई है या लगता है, तू मूर्खा बना दी गई है।

न रहा गया कपिला से और कह दी उसने अपनी ही कथा। तब अभया चिढ़ने की बजाय हँसने लगी- अरी मूर्खा, सेठ ने तुझे सचमुच में मूर्खा बना दिया।

चिढ़ गई कपिला और बोल पड़ी- अच्छा रानीजी, मैं तो मूर्खा बना दी गई, लेकिन आप तो अपने आपको चतुर मानती हैं न? तो आप ही दिखला दीजिए कि आप इस कामदेव की रति बन गई हैं। मैं तो उसी दिन आपकी चतुराई मानूंगी।

रानी मोहित तो हो ही गई थी और तब बात भी तन गई- आखिर वह रानी थी, गुरूर के साथ बोली- मैं तेरी मूर्खता और अपनी चतुराई सिद्ध करके रहूंगी।

दो-दो करणों से रानी अभया बेचैन हो उठी कि राजा के भय से बचते हुए उसे अपनी बात साबित करनी है- अपना आनन्द भी लूटना है तो कपिला को लज्जित भी करना है। वह नाना प्रकार के उपायों पर विचार करने

लगी- कभी कुछ सोचती और कभी कुछ। लेकिन जब वह कुछ भी निर्णय नहीं कर पाई तो उसने अपनी विश्वासपात्र सेविका को बुला भेजा, जो मायाचक्र में सधी सधाई बुद्धि रखती थी। उसका नाम था पंडिता।

पंडिता आई और बोली- मेरे लिए क्या विशेष आज्ञा है महारानीजी की?

पंडिता, मैं एक चक्रव्यूह में फँस गई हूँ। एक ओर मेरी प्रणय तुष्टि का प्रश्न है तो दूसरी ओर कपिला को लज्जित भी करना है लेकिन यह सब इतनी कुशलता से करना है कि महाराज को तनिक भी भनक तक न हो- कहते हुए अभया ने पूरी बात विस्तार से बता दी और खुशामद की- देख, कैसे भी हो इस कार्य को यहाँ राजप्रासाद में ही सम्पन्न करना होगा। मैं तुझे मुँहमांगा पुरस्कार दूंगी।

वह तो ठीक है रानीजी, लेकिन यह कार्य कितना कठिन है कि सेठ सुदर्शन को उठवाकर यहाँ राजप्रासाद में लाया जाए, क्योंकि मैं जानती हूँ कि सेठ ऐसा अटल सदाचारी है जो किसी भी परिस्थिति में इच्छा से यहाँ नहीं आएगा। फिर राजप्रासाद पर ये कड़े पहरे- कैसे क्या करना होगा? पंडिता भी सोच में पड़ गई।

अब तो मेरी बात का भी सवाल है- राजहठ

का सवाल। सोचो, कुछ न कुछ तो करके कार्य को बनाना ही होगा- रानी हठाग्रह से बोली।

कुछ गहराई से सोचकर पंडिता बोली- अच्छा रानीजी, मैं आपके काम को जरूर बनाऊंगी, आप चिन्ता न करें।

पंडिता अब अपनी योजना बनाने में लग गई। वह हृष्टपुष्ट थी और सुदर्शन जैसे व्यक्ति को अपने कन्धों पर उठाकर आसानी से ला सकती थी, क्योंकि अन्ततः सुदर्शन को कंधों पर उठाकर ही तो राजप्रासाद में लाना होगा। किन्तु इतने सारे प्रहरियों से बचकर वह सुदर्शन को कैसे ला पाएगी? राजा को तनिक भी शंका नहीं होनी चाहिए और प्रहरी की शंका आखिर में राजा तक ही तो पहुँचेगी। उसने यह बात प्रासाद में फैला दी कि महारानी पुत्र प्राप्ति की मनोकामना पूरी करने के लिए कंदर्प पूजा में लगी हैं और प्रति रात्रि कंदर्प की नित नवीन मूर्ति मंगवाकर उसकी पूजा करती हैं। तब रात ढले पंडिता सफेद वस्त्र से ढककर रोज एक मूर्ति लाने लगी। प्रहरियों ने शुरू-शुरू में जाँच की, फिर जाँच करना छोड़ दिया- रोज मूर्ति ही तो लाई जा रही है। पंडिता प्रहरियों की तरफ से निश्चिन्त हो गई।

तब उसकी चिन्ता का रुख मुड़ा सेठ सुदर्शन

की तरफ कि कब उन्हें सुविधापूर्वक उठाकर राजप्रासाद में पहुँचाया जा सकता है? वह मौके की ताक में थी और एक रात्रि को वह मौका भी आ गया। रानी को सावधान और सुसज्जित रहने का संकेत देकर पंडिता युक्ति से उस अलग स्थान तक पहुँच गई, जहाँ सेठ सुदर्शन पौषध व्रत लेकर ध्यान में निमग्न थे। उनका पौषध कक्ष पारिवारिक आवास से कुछ अलग हटकर एकान्त में था।

सेठ ध्यान में मौन और मौन में चिन्तन मग्न। पंडिता ने मूर्ति की तरह उन्हें अपने कन्धों पर उठाया, सफेद वस्त्र से ऊपर से नीचे तक ढका और रात के अंधेरे में वह चल पड़ी प्रासाद की ओर। रोज का काम था, किसी प्रहरी ने नहीं टोका और वह रानी अभया के कक्ष में पहुँच गई। उसने उन्हें उतारकर एक पीठिका पर बिठा दिया।

रति-रंभा के समान सजी हुई रानी अभया तब कामदेव के अवतार को अपने वाणी विलास से रिझाने में व्यस्त हो गई। गीत-संगीत से लेकर प्रणय निवेदन तक वह पहुँच गई न्यूनतम लज्जा को भी त्यागकर। पूरी स्थिति का अनुमान करके सेठ सुदर्शन ने अपना ध्यान खोला और मस्तक झुकाकर नम्र स्वर में कहा- लगता

है, मैं राजमाता की सेवा में पहुँचा दिया गया हूँ। माता, अपने पुत्र का प्रणाम स्वीकार करें।

रानी को काटो तो खून नहीं। उसके प्रणय निवेदन का उत्तर उसको माता बनाकर दिया जा रहा है। तुरन्त लज्जा को तिलांजलि देकर वह धृष्टता पर उतर आई- सेठ, ऐसी उल्टी सीधी बातें न करो। मैंने तुम्हें बुलाया है अपने साथ रमण करने के लिए- अपनी कामतृषा को तृप्त करने के लिए, इसलिए दो सौन्दर्य धाराओं का संगम हो जाने दो मेरे प्रियतम- रानी अपनी कामातुरता में बहक गई।

परन्तु सुदर्शन की वीतरागता पर किंचित् मात्र भी प्रभाव नहीं, वे तो यही कहते रहे- आप मेरी माता हैं, सारी प्रजा की माता हैं। पुत्र के सामने आप ऐसी भावना प्रकट करें, यह आपके लिए शोभास्पद नहीं है। पर कामान्ध रानी कैसे मानती? जब कोई प्रयोग सफल नहीं हुआ तो रानी हठात् आत्मरक्षा पर उतर आई और चिल्लाने लगी- बचाओ, इस धर्म ढोंगी से मुझे बचाओ। यह पौषध व्रत का ढोंग रचाकर न जाने कैसे राजप्रासाद में आ गया है और मेरे शीलहरण पर उतारू है .....

चीख सुनकर सेवक आए, प्रहरी आए और राजा स्वयं आया।

सुदर्शन सेठ पीठिका पर बैठे अपने ध्यान में मग्न। पूछने पर किसी प्रश्न का उत्तर नहीं दिया, ध्यान में मौन बैठे रहे। राजा का क्रोध स्वाभाविक ही था- रानी भला झूठ क्यों चीखेंगी और यह ढोंगी भला क्या बोलेगा जब राजप्रासाद में आया हुआ पकड़ा गया है? राजा ने सवेरा होते ही सेठ सुदर्शन को शूलि पर चढ़ाकर मृत्युदण्ड देने का आदेश घोषित कर दिया।

प्रातः होते ही राजकीय घोषणा प्रचारित हो गई सारी नगरी में कि सेठ सुदर्शन को अपने कुचेष्टापूर्ण कुकर्म के लिए सूली पर चढ़ाकर मृत्युदण्ड दिया जा रहा है और उसी घोषणा से जान पाया सुदर्शन का परिवार अपने पर आई आपदा को। नगरी में भिन्न-भिन्न प्रकार की चर्चाएँ होने लगी लेकिन मनोरमा सेठानी ने स्पष्ट रूप से अपनी अन्तर्रात्मा की आवाज परिवारजनों को बताई- मेरे सुदर्शन सेठ ऐसा कभी नहीं कर सकते। वे धर्मदेव के अवतार हैं। उनकी सत्यता सूर्य के प्रकाश के समान अवश्य प्रकट हो जाएगी।

सेठ सुदर्शन को नगरी के राजपथ पर घुमाते हुए वध-स्थल की ओर ले जाया जा रहा था। अधिकांश नगरवासियों की आँखों में आँसू घुमड़ रहे थे। सेठ की वही ध्यान मुद्रा थी। कर्म के उदय से जो कुछ भी

परिस्थिति सामने है, उसे समभावपूर्वक सहन किया जाना चाहिए- वे जानते थे कि धर्म की रक्षा के लिए कष्टों की आग में तो तपना ही पड़ता है। मन ही मन वे सद्भावपूर्वक सभी प्राणियों से क्षमा याचना कर रहे थे- रानी अभया से भी।

वधस्थल पर सूली तैयार थी। उस ऊँचाई तक एक पीठिका द्वारा सेठ को पहुँचाया गया और सूली पर लटकाने से पहले उनसे उनकी अन्तिम इच्छा के विषय में पूछा गया। राजा भी वहाँ उपस्थित था, उसी ने यह बात पूछी। सेठ ने शान्तभाव से कहा- मैंने संसार के समस्त प्राणियों से क्षमा चाही है, अतः आप मेरी यही इच्छा पूरी करें कि यदि मेरे कारण किसी को भी कोई दण्ड देने का अवसर आए तो आप उसे क्षमा कर दें। राजा ने इनकी इच्छा को अपनी स्वीकृति दे दी।

ज्योंही सेठ सुदर्शन को सूली की तीक्ष्ण नोक पर बिठाए जाने का उपक्रम किया गया त्योंही एक चमत्कार हुआ। वहाँ सूली की नोक पर आरोप मंडित सुदर्शन सेठ नहीं थे, अपितु दिव्य प्रकाश से आलोकित वातावरण में वहाँ पर एक रत्नजड़ित सिंहासन रखा था तथा सच्चारित्र की अपूर्व महिमा से मण्डित सेठ सुदर्शन उस पर विराजमान थे। देव छत्र लगाए चँवर ढुला रहे थे और

पुष्पवृष्टि कर रहे थे। यह देख सारा जन समुदाय सेठ सुदर्शन की जय-जयकार कर उठा। देववाणी ने सत्य को स्पष्ट किया।

लज्जा के मारे राजा का मुँह लटक आया- ऐसे गुणवान पुरुष को वह मृत्युदण्ड देने जा रहा था, क्या उसकी न्याय बुद्धि की इतनी-सी ही गहराई थी? उसे रानी की दुष्चरित्रता पर भी लज्जा आई, अपने ही प्रजाजन के समक्ष कैसी दिखाई देगी उसके मुख की कान्ति? अपना मस्तक झुकाए वह सेठ सुदर्शन के समक्ष पहुँचा और अपने अपराध की क्षमा चाहने लगा। सुदर्शन तो नम्रता और क्षमा की मूर्ति थे, करबद्ध होकर बोले- राजन्, आपका क्या दोष है? लेकिन जिनका भी दोष हो, उनको क्षमा कर देने का वचन तो आपसे मुझे पहले ही मिल चुका है, यह आपको भली प्रकार याद होगा।

राजा ने दृढ़तापूर्वक कहा- वह आपकी इच्छापूर्ति का वचन था, किन्तु ऐसे गंभीर अपराधियों को दण्ड नहीं दिया जाएगा तो क्या राज व्यवस्था के सम्बन्ध में भ्रान्त धारणा नहीं फैलेगी?

नहीं फैलेगी महाराज, नहीं फैलेगी। आपके न्याय के प्रति लोगों में विश्वास है और आपके वचन के प्रति भी। क्या मेरे इस विश्वास को आप तोड़ना चाहेंगे?

आप जैसे सदाचारी पुरुष की प्रत्येक इच्छा के आगे मैं झुकूंगा श्रेष्ठिवर, आप निश्चिन्त रहें। मैं आपके क्षमाधर्म का अनुसरण करूंगा- राजा ने सेठ से गले मिलते हुए कहा और उन्हें अपने साथ समारोहपूर्वक नगरी में चलने का निवेदन किया।

राजा दधिवाहन के साथ सेठ सुदर्शन राजकीय हस्ति पर आरूढ़ हुए और जन समुदाय जय-जयकार करते चला। सेठ का निवास आया तो उनका परिवार सेठानी सहित राजपथ पर आया। सेठानी ने उनकी आरती उतारी और कुमकुम से अर्चना की।

स्त्रोत- अंतगड़ सूत्र की टीका।

सार- सदाचार मुक्ति का द्वार होता है।

❖ ❖ ❖

कैसे तोड़ा गया गणतंत्र?

प्राचीन काल में वैशाली और मगध दो सीमावर्ती राज्य थे। वैशाली में लिच्छवियों का गणतंत्र था तो मगध में राजतंत्र। मगध का राजा था अजातशत्रु। दोनों राज्यों की सीमा गंगा नदी के प्रवाह के अनुसार थी। किन्तु गंगा तट के निकटवर्ती एक पर्वत में रत्नों की एक खदान थी जिसके लिए दोनों राज्यों के बीच विवाद था। अन्त में उस विवाद के विषय में एक समझौता हुआ जिसके अनुसार एक समय निर्धारित हुआ कि वर्ष में उस समय पर दोनों पक्ष खदान से रत्न एकत्रित कर लें।

राजतंत्र में एक ही राजा का ध्यान कई समस्याओं की ओर लगा रहने से अजातशत्रु राजा समय पर रत्न एकत्रित करवाने की व्यवस्था नहीं करवा पाता था और गणतंत्र में दायित्व के प्रति सतर्कता का भाव प्रत्येक नागरिक में जागृत होने के कारण लिच्छवी यथासमय सारे रत्न एकत्रित कर ले जाते थे। बार-बार प्रयास के

उपरान्त भी अजात शत्रु को रत्न यथासमय एकत्रित करवा लेने में सफलता नहीं मिली तो वह क्रुद्ध हो उठा और लिच्छवियों की गणतंत्र व्यवस्था को ही नष्ट-भ्रष्ट कर देने के लिए उसने कमर कस ली। परन्तु यह कार्य कैसे किया जाए- इस पर अजात शत्रु अपने मंत्रियों के साथ सोच-विचार करने लगा।

अजात शत्रु का महामंत्री था वस्सकार, जो अतीव बुद्धिशाली और कूटनीतिक था। वह देख रहा था कि लिच्छवी गणतंत्र के नायक, सदस्य और समस्त नागरिक एकता के सूत्र में बंधे हुए थे, अपने गणतंत्र की सुरक्षा के लिए साहस के साथ कटिबद्ध थे और अपने सामूहिक दायित्वों का निर्वाह करने के लिए व्यक्तिगत स्वार्थों की उपेक्षा करने में सदा तत्पर रहते थे। ऐसे सावधान लोगों को आपस में कैसे लड़ाया जाए और उन्हें अपने स्वार्थों में फँसाकर गणतंत्रीय हित को उन्हीं के हाथों कैसे नष्ट किया जाए- इसी विषय में वह बराबर सोचता रहता था।

वस्सकार ने उन तथ्यों को ज्ञात करने का प्रयास किया जो लिच्छवियों की शक्ति के प्रतीक थे। उसने जाना कि वे सदा नियमबद्ध प्रणाली के अनुसार ही अपने सभी कार्यों का संचालन करते हैं तथा स्थापित नियमों

की तनिक भी अवहेलना नहीं करते हैं। उसने उन स्थापित नियमों की भी जानकारी ली तो उसे पता चला कि गणतंत्र की प्रणाली में सात नियमों का पालन सभी दृढ़तापूर्वक करते हैं। वे नियम थे- गणतंत्र परिषद् की बैठक में प्रत्येक सदस्य का नियमित रूप से उपस्थित रहना एवं भाग लेना, परिषद के कार्य-संचालन एवं निर्णयों में सदा एकमत रहना, वैधानिक कार्यों की अवहेलना नहीं करना तथा अवैधानिक कार्य कदापि नहीं करना, वृद्ध एवं वरिष्ठजनों का सदैव सम्मान करना, स्त्रियों तथा कुमारियों के साथ विवाह के लिए या अन्यथा बलात् व्यवहार नहीं करना, सभी नागरिकों द्वारा अपनी परम्परागत मर्यादाओं का निष्ठापूर्वक पालन करना तथा अपनी धार्मिक आस्थाओं को दृढ़ता से मानना व धर्म गुरुओं का आदर करना। इन सात नियमों के यथावत् पालन के सिवाय लिच्छवियों का एकमत बने रहना उनके गणतंत्र का विशेष गुण था। यहाँ तक कि अपने भोजन, पान, वस्त्राभूषण आदि तक में वे एकमत रहते थे तथा आह्वान के अनुसार सदा एक समान आचरण करते थे।

महामंत्री को लगा कि यही लिच्छवी गणतंत्र की शक्ति का मूलाधार है और जब तक यह आधार पुष्ट

बना हुआ रहेगा, तब तक इस गणतंत्र को नष्ट-भ्रष्ट तो क्या अव्यवस्थित तक नहीं बनाया जा सकेगा। उसने मूल बात को पकड़ लिया कि किसी तरह उनके एकमत बने रहने के अनुभाव को क्षत-विक्षत किया जाना चाहिए और इसके लिए समस्त लिच्छवी नागरिकों के मन में कूटनीतिक माध्यमों से एक-दूसरे के प्रति सन्देह उत्पन्न कर दिए जाने चाहिए।

कहिये महामंत्री, अभी तक समस्या पर आपका सोच-विचार ही चल रहा है अथवा आप किसी निर्णयात्मक बिन्दु तक भी पहुँच पाए हैं- अजात शत्रु ने वस्सकार से अपनी गुप्त मंत्रणा के समय पूछा।

राजन्, मैंने काफी खोजबीन भी की है और लिच्छवी गणतंत्र की प्रणाली के बारे में कई तथ्यों का पता भी लगाया है। इन्हीं के आधार पर निर्णय के सूत्र निकाले जा सकेंगे।

क्या विचार विश्लेषण है तुम्हारा? जो प्राप्त जानकारी के आधार पर अब तक तुम कर सके हो?

वैशाली के गणतंत्र की मूल शक्ति है उनका मतैक्य। इसको तोड़े बिना कोई काम नहीं बनेगा।

हाँ महाराज, इसके लिए कूटनीति का प्रयोग आवश्यक है। मैंने विचार किया है कि कूटनीति के इन

दो अस्त्रों का प्रयोग पहले किया जाए- एक उत्कोच और दूसरा भेद। उत्कोच (रिश्वत) के लिए अपने कोष में धन की कमी नहीं है किन्तु भेद (सन्देह पैदा करके विरोध डालना) के लिए योजनाबद्ध रीति से कार्य करना होगा।

इस योजना पर भी प्रकाश डालो, ताकि उस गणतंत्र को नष्ट भ्रष्ट करने के अपने अभियान पर शीघ्रातिशीघ्र कार्यारंभ कर दिया जाए।

राजन्, इसके लिए यह उपाय करना होगा। कल से ही आप राज्यसभा में लिच्छवियों की चर्चा करना प्रारंभ करें। जब आप चर्चा करेंगे तो मैं उनके पक्ष में बोलूंगा। यह क्रम कुछ दिनों तक चलता रहे। फिर मैं उनके समर्थन में उत्तेजना लाऊंगा, तब आप मुझ पर रोष दिखाकर मेरा सिर मुण्डवा कर राज्य से मेरे निष्कासन का आदेश दे दें।

ऐसा दण्डात्मक उपाय क्यों?

यह आवश्यक है महाराज, लिच्छवियों के मेरे प्रति विश्वास जगाने के लिए।

अच्छा, फिर?

उस आदेश के बाद मैं सारे मार्ग पर जोर-जोर से यह कहता हुआ निकलूंगा कि मुझे जो यह दण्ड दिया गया है, वह अन्यायपूर्ण है, मैं मेरे अपमान के लिए मगध के राज्य से प्रतिशोध लेकर रहूंगा। मैं यहाँ के राजा

और राज्य की सारी कमजोरियाँ जानता हूँ तथा इनको प्रकट करके अपने अपमान का बदलना नहीं लिया तो मेरा नाम भी वस्सकार नहीं। महाराज, तब मेरी यह बात चारों ओर फैल जाएगी और किन्हीं लिच्छवियों का मन मेरे पक्ष में अवश्य आकर्षित होगा। वैसी स्थिति में मैं अपना भेदकार्य आरंभ कर दूंगा।

अजात शत्रु अपने महामंत्री के कूटनीतिक कौशल पर हर्षित हो उठा। योजना के अनुसार सारा नाटक किया गया और वह लिच्छवियों के गणतंत्र में चर्चा का प्रमुख विषय बन गया।

वैशाली गणतंत्र परिषद् की बैठक हो रही थी, सभी सदस्य उपस्थित थे। उस समय वस्सकार प्रकरण की चर्चा उठ गई। एक युवा सदस्य बोला- वस्सकार मगध से निष्कासित कर दिया गया है और वह अपने अपमान से क्रुद्ध है तो उसे हमारे यहाँ बुलाकर मगध राज्य को दुर्बल बनाने का प्रयत्न करना चाहिए।

अन्य युवा सदस्य ने इस प्रस्ताव का समर्थन करते हुए इस बात पर बल दिया- चूंकि वस्सकार मगध का महामंत्री था और वह वहाँ की सारी कमजोरियाँ जानता है इस कारण वह हमारे गणतंत्र के लिए बड़ा उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

अधिकांश सदस्य इसी मत के रहे कि वस्सकार को वहाँ आमंत्रित किया जाना चाहिए, किन्तु एक वृद्ध सदस्य ने अपना मत व्यक्त किया- वस्सकार बड़ा कूटनीतिक है। इस आदेश से पूर्व ऐसा गंभीर कुछ नहीं सुना गया कि अजात शत्रु और उसके बीच कोई जोरदार मतभेद उठ खड़ा हुआ हो, अतः उसे आमंत्रित करने से पूर्व भली-भाँति सोच लिया जाना चाहिए कि कहीं दाल में कुछ काला न हो। किन्तु अति उत्साह में कि शत्रु का शत्रु अपना मित्र होता है, उस वृद्ध के मत पर कोई ध्यान नहीं दिया गया।

परिषद् में पहली बार एकमत से नहीं, बल्कि बहुमत से यह निर्णय लिया गया कि वस्सकार को वैशाली गणतंत्र का अमात्य बनने के लिए निमंत्रित किया जाए। निर्णयानुसार वस्सकार वैशाली गणतंत्र का अमात्य बना दिया गया।

और वस्सकार ने शुरू कर दिया अपनी कूटनीति का खेल तथा भेद के अस्त्र का खुला प्रयोग।

एक स्थान पर अनेक लिच्छवी नागरिक एकत्रित हो रहे थे और किसी विषय पर वार्ता कर रहे थे, तभी अमात्य वस्सकार वहाँ पहुँचा। उसने जानबूझकर उनमें से एक नागरिक को अपने पास बुलाया, सबके देखते हुए

उसे अपने साथ एकान्त में ले गया और उसके साथ बातचीत शुरू की। वस्सकार ने पूछा- तुम अपना खेत जोतते हो?

हाँ जोतता हूँ- उसने उत्तर दिया।

दो बैल हल में लगाकर जोतते हो या किसी अन्य प्रकार से?

दो बैल हल में लगाकर ही मैं अपना खेत जोतता हूँ।

अच्छा जाओ।

वह नागरिक पुनः उस समुदाय में चला गया तो सब पीछे पड़ गए और पूछने लगे- भाई, अमात्य की तेरे पर बड़ी कृपा हो गई है, एकान्त में ले जाकर तेरे साथ किस विषय पर विचार विमर्श किया?

उस नागरिक ने जो वार्ता हुई थी उसे वैसी की वैसी दोहरादी, पर उसकी बात पर किसी ने विश्वास नहीं किया- क्यों हमको तू मूर्ख बनाता है? अमात्य क्या निठल्ला है जो तेरे से ऐसी फालतू बात करेगा? अवश्य तुझे उसने अपना गुप्तचर बनाया है हमारी भीतरी बातें जानने के लिए और तू झूठ बोल रहा है। नागरिक ने सच सबको समझाना चाहा पर कोई नहीं माना। सब उसे उसके बाद सन्देह की नजर से देखने लगे।

वस्सकार ऐसा कार्य स्थान-स्थान पर करने लगा। जहाँ कहीं लिच्छवियों का समुदाय वह देखता, उसमें से एक नागरिक को बुलाकर एकान्त में फालतू के सवाल पूछता, जैसे आज तुमने कौनसा शाक खाया, वह कैसा बना था या तुम किस रंग का वस्त्र पहनते हो, क्यों पहनते हो आदि और उस नागरिक को वापिस समुदाय में भेज देता। समुदाय उसकी बात पर विश्वास नहीं करता और उसे अपने सन्देह के घेरे में ले लेता। उसने यह काम एक अभियान के रूप में बड़ी तेजी से चलाया।

फलस्वरूप स्थान-स्थान पर संदेहास्पद नागरिकों की संख्या बढ़ने लगी। लोग अकारण सन्देह करते तो संदेहास्पद व्यक्ति गणतंत्र के प्रति कटुता का भाव बनाते और इस प्रकार एकता का वातावरण टूटने लगा, जो मुख्य रूप से मतैक्य पर प्रहार करने वाला बन गया। एकमत की चट्टान पर निरन्तर हथौड़े बरसने लगे और गणतंत्र की शक्ति क्षीण होने लगी। कहीं भी कोई निर्णय एकमत पर आधारित नहीं होने लगा- सर्वत्र विरोधी अवश्य मिल जाते। वस्सकार की भेदनीति पूरा रंग दिखाने लगी।

वस्सकार को एक बार अपनी सफलता को परखने की इच्छा हुई। आह्वान भेरी बजाई गई किसी

भोजन विधि पर मत प्राप्त करने के लिए कुछ नागरिक आये किन्तु उस पर आपस में विवाद ही करने लगे। वह तू-तू मैं-मैं में बदल गया, फिर तो वे हाथापाई ही करने लगे और कोई निर्णय नहीं लिया जा सका।

भेदनीति का चक्र तब और तेजी से चलाया जाने लगा। लिच्छवियों में परस्पर अविश्वास और मनोमालिन्य इतना कटुतम हो गया कि एक लिच्छवी दूसरे लिच्छवी को फूटी आँखों नहीं देखता या कि एक रास्ते से दो लिच्छवी साथ-साथ नहीं निकलते। प्रत्येक लिच्छवी दूसरे लिच्छवी को सन्देह की दृष्टि से देखता कि कहीं वह उसकी पीठ में छुरा न घोंप दे।

वस्सकार को जब अपनी सफलता का पूर्ण विश्वास हो गया तो उसने लिच्छवियों की अन्तिम परीक्षा ली। गणतंत्र पर किसी बाह्य शत्रु के आक्रमण होने की अवस्था में जो आह्वान की भेरी बजाई जाती थी वही भेरी उसने एक दिन यों ही बजवा दी। आश्चर्य कि उस भेरी को सुनकर भी एक भी लिच्छवी उस स्थल पर नहीं पहुँचा। सभी यही सोचकर घरों में बैठे रहे कि गणतंत्र से हमारा क्या लेना देना? जो राज्य के नजदीक हैं, कानों-कानों में बातें करते हैं, वे ही जाएँ और जो करना हो करें।

तब यह निश्चय हो गया कि सात नियम टूटे, एकमत टूटा और यों लिच्छवी गणतंत्र का सारा संगठन ही टूट गया है। अब वह शक्तिहीन है।

योजना पूरी हुई और वस्सकार चुपचाप मगध चला गया। तब अजात शत्रु ने वैशाली पर आक्रमण किया और उन लिच्छवियों को पराजय की धूल चटा दी, जो तब तक उसे धूल चटाया करते थे। नीति पर टिका था गणतंत्र, राजतंत्र ने कूटनीति से उसे नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।

स्त्रोत- त्रिषष्ठिश्लाका पुरुष 10 वाँ पर्व, 12 वाँ सर्ग।

सार- गणतंत्र की मूल, शक्ति मतैक्य में होती है।